सोमसी

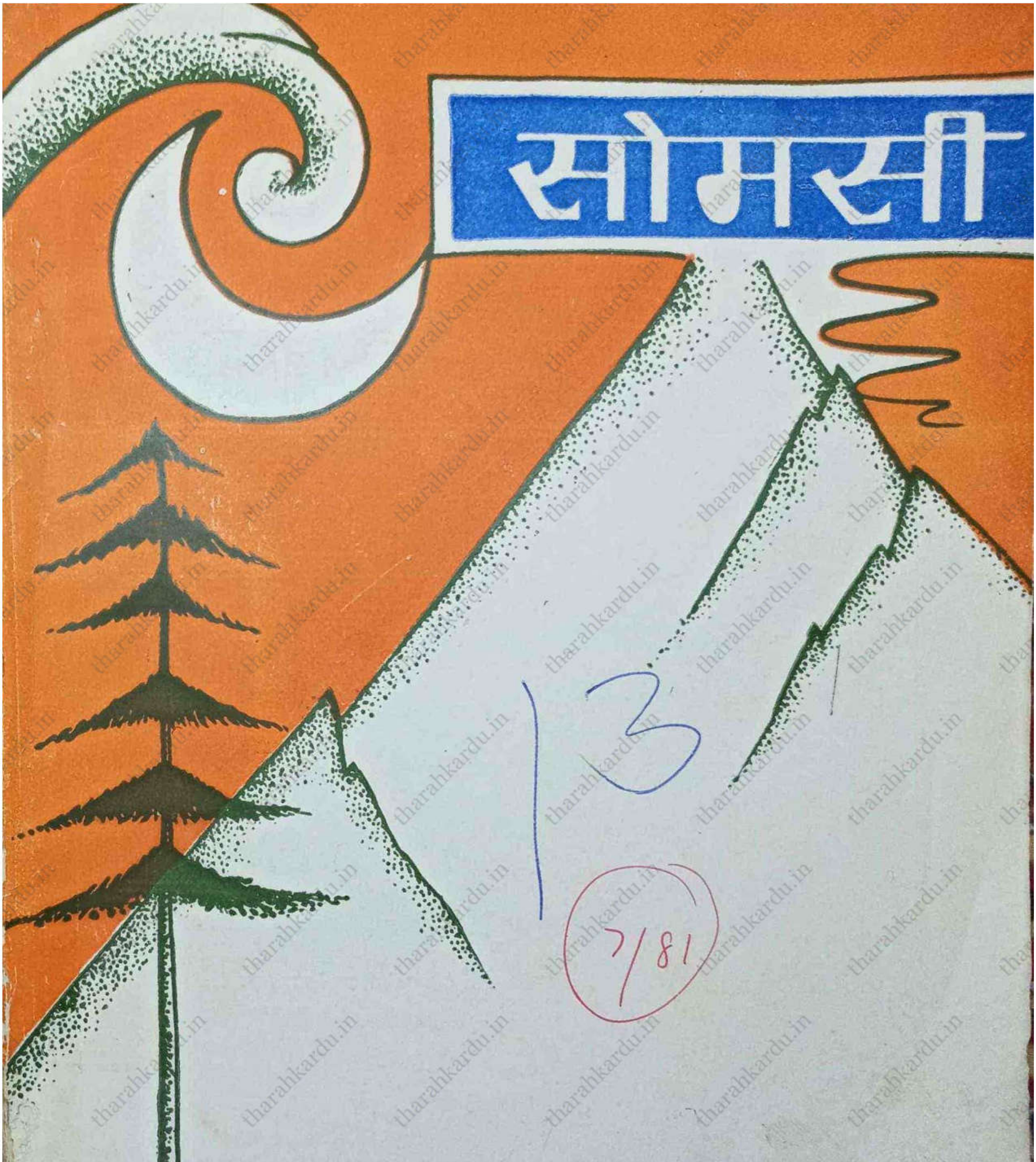

हिमाचल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला-2

tharahkardu.in

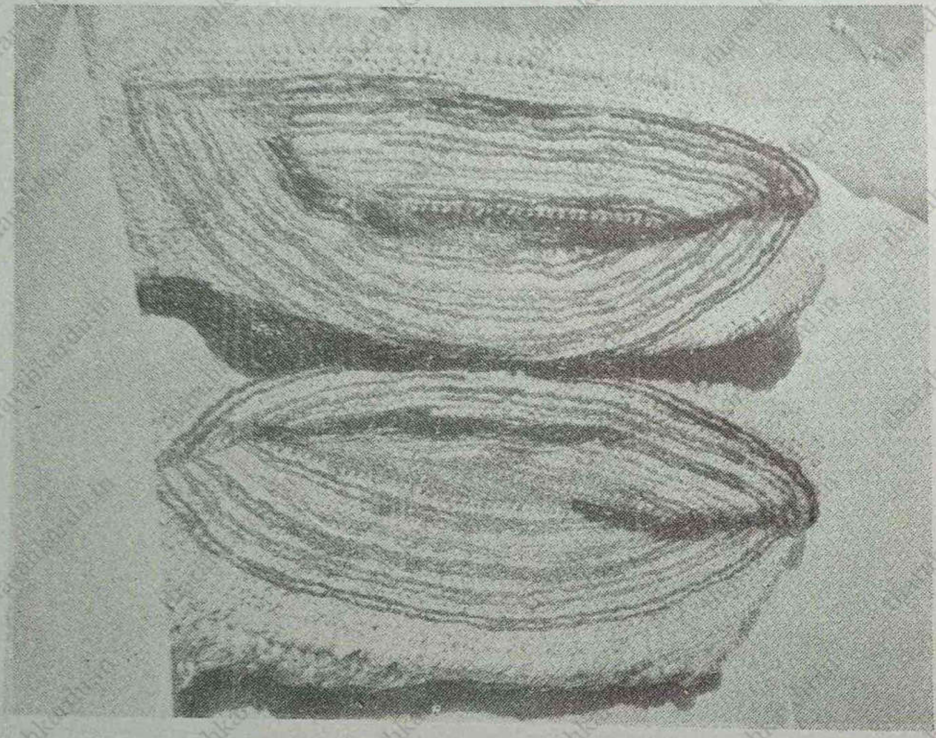

श्री किशोरी लाल वैद्य के लेख 'हिमाचल का लोक कला वैशिष्ट्य' से सम्बन्धित (पृष्ठ 1–5)

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 7 जुलाई, 1981 अंक 3

मुख्य सम्पादक :
अध्यक्ष अकादमी
शिव कुमार उपमन्यु

सम्पादक :
मौलू राम ठाकुर

सहयोगी :
सरोज सांख्यायन

आवरण :
ओम प्रकाश

२७

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य ।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

वार्षिक चन्दा–12 रु० एक प्रति–3 रु०

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी,
पीच ब्लाज्म काटेज, शिमला - *171002*

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय		*(i)*
2.	हिमाचल का लोक कला वैशिष्ट्य	—श्री किशोरी लाल वैद्य	1
3.	कांगड़ा जनपद की परम्पराएं-भूल रही हैं	—डॉ० शमी शर्मा	6
4.	देव सूमी	—श्री सुखराम हिंगोराणी	11
5.	प्राचीन हिमाचल में शिक्षा, लिपि, भाषा और साहित्य का विकास	—डॉ० लालता प्रसाद पाण्डेय	17
6.	गुलेरी जी अपने शब्दों में	—डॉ० विद्याधर शर्मा गुलेरी	26
7.	पांच पोथी पण्डित	—श्री सन्तराम वत्स्य	31
8.	हिमाचल प्रदेश में प्रचलित कुछ विश्वास एवं परम्पराएं	—श्री तिलक राज निर्मोही	34
9.	हिमाचली लोक गाथाएं-संस्कृति और इतिहास	—श्री अरुण भारती	40
10.	हिमाचल के लोक गीतों में करूणा रस	—श्री दुर्गादत्त शास्त्री	46
11.	जापान की कला में सरस्वती	—कु० शशिबाला	49
12.	पहाड़ों में नाग पूजा	—श्री अशोक जेरथ	53
13.	देवता रुदड़ की देव गाथा	—श्री पन्ना लाल जोगटा	57
14.	सृजनहार की खोज	—श्री खेमराज गुप्त	63
15.	अकादमी की गतिविधियां	—श्री अशोक कुमार हंस	97

सम्पादकीय

जौनसर-बावर से लेकर भद्रवाह तक के पहाड़ी भाषा के क्षेत्र में डॉ० ग्रियर्सन ने प्रमुख नौ बोलियों का समावेश किया है। परन्तु इन्हीं बोलियों से घिरी हुई अन्य दो बोलियों को डॉ० ग्रियर्सन ने (पश्चिमी) पहाड़ी भाषा की बोलियां नहीं माना है। ये दो बोलियां हैं कांगड़ी और कहलूरी। कांगड़ी बोली मूलतः भूतपूर्व कांगड़ा जिला तथा उसके आस-पास के पड़ोसी क्षेत्रों की बोली है, जिसमें अब हिमाचल प्रदेश के वर्तमान कांगड़ा, हमीरपुर और ऊना जिला शामिल हैं। इस समस्त कांगड़ी बोली के क्षेत्र के उत्तर में चम्बा, पश्चिम में कुल्लू और मण्डी, दक्षिण में बिलासपुर तथा दक्षिण पश्चिम और पश्चिम में होशियारपुर और गुरदासपुर के क्षेत्र पड़ते हैं। इस प्रकार कांगड़ी बोली लगभग तीन ओर से पहाड़ी भाषी क्षेत्र से घिरा है और एक ओर पंजाबी भाषा क्षेत्र पड़ते हैं।

भूतपूर्व कहलूर और मंगल रियासतों की भाषा को कहलूरी कहते हैं। इस क्षेत्र का प्रमुख भाग अब बिलासपुर जिले में पड़ता है, और यह बोली अब बिलासपुरी के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। इसके दक्षिण में सोलन जिला, पश्चिम में मण्डी जिला उत्तर में एक तरफ वर्तमान हमीरपुर और उससे आगे ऊना जिले पड़ते हैं, तथा पूर्व में पंजाब का होशियारपुर जिला पड़ता है।

डा० ग्रियर्सन ने दोनों कांगड़ी और कहलूरी को पहाड़ी भाषा की बोलियां नहीं माना है। कहलूरी के बारे में डा० ग्रियर्सन लिखते हैं कि "कहलूरी को आज तक पश्चिमी पहाड़ी का एक रूप माना जाता रहा है और स्थानीय लोग इसे पहाड़ी ही कहते हैं। परन्तु (बोली के) नमूने से प्रकट होता है कि ऐसी बात नहीं है।" वे इसे होशियारपुर में बोली जाने वाली पंजाबी का एक रूप मानते हैं, परन्तु न बोली का पूर्ण नमूना देते हैं और न ही कोई व्याकरण।

कांगड़ी को भी वे पंजाबी का रूप मानते हैं, जो पड़ोसी भाषा डोगरी और पहाड़ी का मिश्रण है और यहां तक कि उसमें कश्मीरी के भी प्रभाव हैं। वास्तव में डा० ग्रियर्सन पंजाबी-भाषा की दो बोलियां मानते हैं—"एक भाषा का सामान्य बोलचाल का रूप और दूसरा डोगरा या डोगरी। इनमें से डोगरी अपने विभिन्न रूपों में जम्मू रियासत के उप-पहाड़ी क्षेत्र और अधिकतः कांगड़ा जिला के मुख्यालयों मण्डल में बोली जाती है।" आगे चलकर डोगरी भाषा का उल्लेख करते हुए वे फिर लिखते हैं। "डोगरा (अर्थात् डोगरी) की तीन उप-बोलियां हैं। ये मण्डियाली, कांगड़ा और भटियाली है। कांगड़ा बोली कांगड़ा जिला और तहसीलों के मुख्यालयों की प्रमुख भाषा है।" सारांश यह है कि उनके अनुसार—

१. पंजाबी की दो बोलियां हैं, और उनमें से एक डोगरी है,

२. डोगरी बोली की तीन उप-बोलियां हैं जिनमें से एक कांगड़ी है, तथा

३. कांगड़ी मुख्यतः जिला और मण्डल-तहसील मुख्यालयों में बोली जाती है।

स्पष्ट है कि डा० ग्रियर्सन कांगड़ा जिला की समस्त भाषा को डोगरी के माध्यम से पंजाबी की उप-बोली नहीं मानते, बल्कि केवल उस रूप को डोगरी की उप-बोली मानते हैं जो जिला के मुख्यालय और मण्डल-तहसील के मुख्यालयों में बोली जाती है। अर्थात् जो बोली जिला और तहसील मुख्यालयों से बाहर बोली जाती है वह डोगरी की उपबोली नहीं है। कांगड़ी की स्थिति में स्पष्ट रूप से जिला और तहसील मुख्यालयों का उल्लेख करके उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह इन मुख्यालयों से बाहर की बोली को पंजाबी-डोगरी की उप-बोली नहीं मानते, बल्कि केवल मुख्यालयों में बोली जाने वाली भाषा को ही डोगरी का रूप कहते हैं। अब यह एक सर्वसम्मत और असंदिग्ध राय है कि राज्य, जिला या तहसील की बोली समस्त क्षेत्र के मूल निवासियों की भाषा नहीं होती। यह कचहरी फाषा होती है जो तथाकथित पढ़े लिखे कर्मचारियों और कार्यालय में काम के लिए आए लोगों की काम चलाऊ भाषा होती है जो मूल निवासियों की भाषा की वास्तविक प्रतिनिधि नहीं होती। अतः स्पष्ट है कि जिस बोली को ग्रियर्सन ने डोगरी की उप-बोली कहा है, वह कांगड़ा के देहात की भाषा नहीं बल्कि कर्मचारियों और लोगों के बीच की बोल-चाल की कलुषित भाषा है।

यदि तर्क के लिए इसे कलुषित भाषा न भी मानें, तो भी केवल मुख्यालय की बोली के आधार पर सारे क्षेत्र की बोली को पंजाबी–डोगरी का रूप नहीं माना जा सकता। मुख्यालयों का स्पष्ट हवाला देकर दो विकल्प स्पष्ट होते हैं– अर्थात् या तो डॉ० ग्रियर्सन मुख्यालयों से बाहर की बोली को पंजाबी–डोगरी की उप-बोली नहीं मानते, या उन्हें मूल कांगड़ी बोली का ज्ञान नहीं था। फिर भी उनकी जो सीमाएं थीं उन्हें वे स्वयं भी जानते थे और उन्होंने स्थान-स्थान पर इस बात का संकेत भी किया है। वे अपनी सीमाओं से बाहर नहीं जा सकते थे। और कांगड़ी के बारे में उनकी ये कठिनाइयां तथा सीमाएं और अधिक प्रबल हुई हैं, क्योंकि वे लिखते हैं कि "जिस नमूने के आधार पर वे कांगड़ी भाषा का अध्ययन कर रहे हैं और वैयाकरणिक निर्णय दे रहे हैं वह नमूना कांगड़ा के निवासी ने नहीं लिखा है।" स्पष्ट है कि लेखक कोई जिला मुख्यालय का कर्मचारी होगा जो कांगड़ा के बाहर पंजाब का था और जो अनुवाद उसने भेजा वह मूल कांगड़ी का प्रतिनिधि नहीं था, बल्कि उसकी अपनी बोली थी जिसमें मुख्यालय की बोली का मिश्रण था। इस लिए निस्सन्देह ही कांगड़ी के बारे में डॉ० ग्रियर्सन का आधार ही दोषपूर्ण था और अनुवादक के मुख्यालय में लिखे हस्तलेख की भाषा थी। पिछले पृष्ठों पर उद्धृत 'मुख्यालयों' से भी डॉ० ग्रियर्सन का मुख्य हवाला जिला कार्यालय से ही था। अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' के पृष्ठ ६०६ पर वे 'कांगड़ा जिला के मुख्यालयों डिविज़न लिखते हैं और पृष्ठ ६३७ पर 'कांगड़ा जिला के मुख्यालयों तहसीलों' का उल्लेख करते हैं।

वास्तव में डॉ० ग्रियर्सन कांगड़ी के बारे में स्पष्ट नहीं हैं। उनका कांगड़ी बोली का हस्तलेख कांगड़ा निवासी द्वारा लिखा नहीं गया था और वे मुख्यालयों की बोली को ही डोगरी

की उप-बोली कहते हैं, या दूसरे शब्दों में कांगड़ा से बाहर के अनुवादक की भाषा को डोगरी का रूप मानते हैं और बाद के बहुत से लेखकों और विद्वानों ने बिना गहन अध्ययन किए यही धारणा अपना ली कि कांगड़ी पंजाबी की बोली है। असल में यह धारणा वस्तुस्थिति के बिल्कुल प्रतिकूल है। कांगड़ी बोली तीन ओर से पहाड़ी भाषा से घिरी हुई है। इसके उत्तर भाग में, डॉ० ग्रियर्सन के शब्दों में, गद्दी लोग गादी बोलते हैं जो पहाड़ी की एक बोली है। उत्तर के शेष भाग में चम्बा जिला की चम्बयाली का क्षेत्र है। पश्चिम के एक छोटे भाग में कुलुई बोली तथा बहुत बड़े भाग में मण्डियाली बोली जाती है। दक्षिण में बिलासपुर का क्षेत्र है जहां कहलूरी को तो स्वयं डॉ० ग्रियर्सन पहाड़ी मानते हैं। अर्थात् उत्तर में चम्बा से लेकर दक्षिण में बिलासपुर तक कांगड़ी पहाड़ी बोलियों से घिरी है, कहलूरी स्वयं तीन तरफ शिमला पहाड़ी से ढकी है। केवल पश्चिमी भाग ही पंजाबी क्षेत्र से संलग्न है। अतः इसका डोगरी की उप-बोली होना सम्भव नहीं है। कांगड़ी की अपेक्षा चम्बयाली बोली डोगरी के अधिक निकट होनी चाहिए क्योंकि उसका क्षेत्र डोगरी क्षेत्र से लगता है। परन्तु डॉ० ग्रियर्सन ने चम्बयाली को डोगरी की उप-बोली नहीं माना बल्कि स्पष्ट रूप में पहाड़ी की बोली निर्धारित की है। कारण यह है कि चम्बयाली के बारे में उनके पास अपने भाषा नमूने के अतिरिक्त और अधिक व्यापक और प्राधिकृत सामग्री थी, जिनमें मुख्यतः रेव० टी० ग्राहम बेली की 'लैंग्वेजिज आफ दि नार्दर्न हिमालयाज' और डॉ० जे० पी० एच० बोगल की १६वीं तथा १७वीं शताब्दियों की "प्रशस्तियों (अधिकार पत्रों) से ली गई चम्बयाली शब्दावली" जैसी रचनाएं थीं। ऐसी सामग्री कांगड़ी के बारे में उन्हें प्राप्त न हुई। कांगड़ी बोली दूर की डोगरी की अपेक्षा पड़ोसी बोलियों अर्थात् चम्बयाली, गादी, कुलुई, मण्डियाली से अधिक प्रभावित होनी चाहिए। परन्तु डा० ग्रियर्सन कांगड़ी से निकटतः मिलती चम्बयाली और मण्डियाली को तो पहाड़ी मानते हैं, कांगड़ी को ऐसा नहीं मानते।

वस्तुतः इस सारे विवेचन से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—एक यह कि डा० ग्रियर्सन के पास कांगड़ी बोली का सही रूप सही ढंग से प्राप्त न हो सका और इसलिए एक अजनबी द्वारा प्रस्तुत किए गए नमूने के आधार पर इसे वास्तविक रूप से नहीं आंका गया। दूसरे यह है कि जैसा भी उन्होंने मूल्यांकन किया है, वे केवल जिला मुख्यालय की बोली को ही डोगरी की उप-बोली मानते हैं, सारे कांगड़ी भाषी क्षेत्र की बोली को नहीं। ऐसी परिस्थितियों में कांगड़ी बोली के बारे में भूल हुई, या दूसरे शब्दों में इसके साथ अन्याय हुआ है। गलत प्रतिनिधित्व के कारण कांगड़ी भ्रान्त-धारणा की शिकार हुई, और बाद तक इसके सही रूप पर आक्षेप लगता रहा।

डा० गियर्सन के बाद कांगड़ी बोलियों पर, अन्य पहाड़ी बोलियों की तरह वैज्ञानिक अध्ययन तो नहीं हो सका परन्तु बाद की घटनाओं द्वारा यह बात स्पष्ट हो गई है कि कांगड़ी बोली डोगरी के माध्यम से पंजाबी की उप-बोली नहीं है। इन घटनाओं में से सबसे महत्वपूर्ण पंजाब सीमा-कमीशन की रिपोर्ट और उसके आधार पर भूतपूर्व पंजाब राज्य का विभाजन है। पंजाब में कई वर्षों के भाषायी संघर्ष के बाद प्रथम नवम्बर १९६६ को पंजाब का पुर्नगठन हुआ जिसका मूलाधार भाषायी एकता और सांस्कृतिक समानता थी। इसी आधार पर कांगड़ा के हिमाचल में मिलने से इसका भाषायी स्वरूप स्पष्ट हो गया है।

—एम० आर ठाकुर

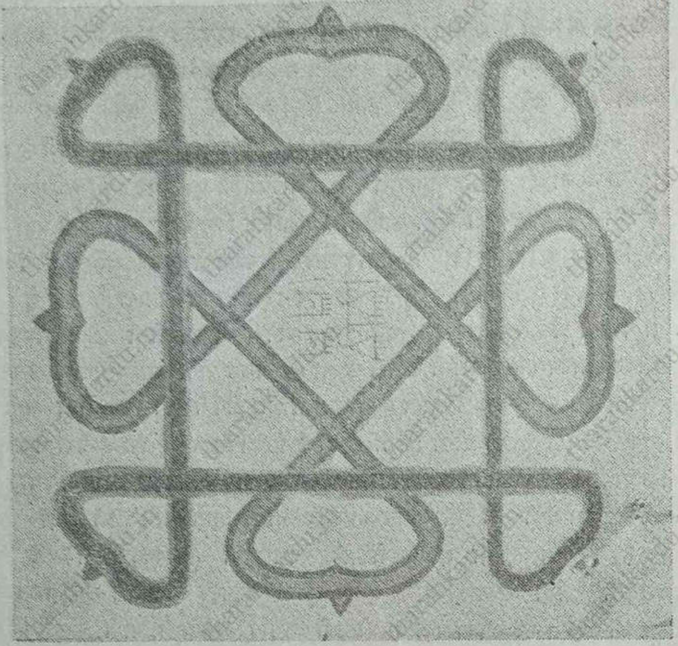

श्री किशोरी लाल वैद्य के लेख 'हिमाचल का लोक कला वैशिष्ट्य'
से सम्बन्धित (पृष्ठ 1–5)

हिमाचल का लोक कला-वैशिष्ट्य

—किशोरी लाल वैद्य

किसी भी प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन में उसकी लोक-कलाओं का विशिष्ट स्थान होता है। लोक-कला किसी अंचल विशेष की सांस्कृतिक समृद्धि का द्योतक भी है। हिमाचल प्रदेश लोक-कलाओं की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न क्षेत्र रहा है। यों तो लोक कला के क्षेत्र में लोक-गीत, संगीत, नृत्य, नाट्य आदि भी सम्मिलित किये जा सकते हैं लेकिन इन सभी कलाओं का अपना निजी क्षेत्र भी बहुत स्पष्ट और विशिष्टि है। अतः इन कलाओं से अलग भी लोक-कला का निजी क्षेत्र बहुत व्यापक है जिसकी मात्र रूप-रेखा का संक्षिप्त सा परिचय देना यहां अभीष्ट रहेगा।

हिमाचल की लोक-कलाओं का स्वरूप बहुत हद तक प्रदेश की भौगोलिक तथा जलवायुगत परिस्थितियों द्वारा भी निर्धारित हुआ है। विभिन्न लोक-कलाओं में प्रयुक्त होने वाला कच्चा माल यदि स्थानीय रूप से उपलब्ध होता हो तो वे कलाएं अधिक देर तक जीवित रह सकती हैं तथा उनमें फलने फूलने के लिए आपेक्षित आयाम मिल पाते हैं। अतः इस दृष्टि से भी लोक-कलाओं का आकलन किया जाना चाहिए।

लोक-कलाओं में हमें जन-जीवन की रचनात्मकता का सहज प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। उसमें हमारे समाज की सृजनात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति रहती है। इसमें हमें अपनी माटी की गंध महसूस होती है, अपने परिवेश के एक लयात्मक अमूर्त्तन का बोध होता है। इसमें निहित संगीत स्वच्छन्दता का अनुगामी होता है, वह प्रकृति से अपने सामंजस्य का उद्घोष करता है। यह वह जुबां होती है जो सहज है, सुगम है, सुमधुर भी लेकिन सशक्त, सक्षम भी है।

हिमाचल प्रदेश की लोक-कलाओं का सम्यक विवेचन अपने आप में एक व्यापक विषय है चूंकि लोक-कलाओं के नाम पर यह निश्चित करना ही एक कठिन कार्य है कि किस कला विशेष को उसमें सम्मिलित किया जाए और किसको छोड़ा जाए। फिर भी सुविधा की दृष्टि से हम आज के इस विषय को किन्हीं सीमाओं के भीतर ही देखने परखने की कोशिश करेंगे।

यद्यपि वास्तुकला और स्थापत्य कला में भी हमें लोक तत्व के दर्शन सुलभ हो जाते हैं, लेकिन यदि एक स्तर पर हम ऐसी लोक-कला को देखना चाहें जो किसी राजा व धनी-मानी व्यक्ति के आश्रय के बिना पनपी है तो भी हिमाचल प्रदेश का कोई घर-आंगन, खेत-खलिहान, हाट-बाजार, गली-मुहल्ला ऐसा नजर नहीं आएगा जहां लोक कलाकार ने अपने कला-मानस का न्यूनाधिक परिचय न दिया हो। ऊंचे, पर्वतीय क्षेत्रों की ओर नजर दौड़ाएं तो शायद किसी भी घर का

प्रशवे-द्वार या आंगन-क्यारी गणेश की सुन्दर, कलात्मक लघु प्रतिमा के बिना नहीं मिलेगा। कई बार प्रतिमा प्रवेश द्वार की ऊपरली पट्टी पर ही उत्कीर्ण नजर आ जाएगी। आंगन के मध्य में भूताग्नि तथा हरिप्रिया के रूप में तुलसी की मौजूदगी नजर आती है। कतिपय संस्कार-सम्पन्न घरों में तुलसी की क्यारी को खिले हुए कमल का आकार दिया गया होता है और कहीं-कहीं यह क्यारी सामान्य गोलाकार या चौकोर शकल में दिखाई देती है। इस क्यारी में भी गणेश की प्रतिमा उत्कीर्ण रहती है। कुछ श्रद्धालु लोगों के घरों में हरिचरणकी शिला भी प्रवेश-द्वार पर रहती है।

प्रस्तर कला के अनेक सुन्दर उदाहरण हमें पीपल के चबूतरों, मन्दिर-प्रांगणों में तथा चश्मों और बावलियों पर नजर आ जाएंगे। इनमें अनेक हिन्दू धर्म के प्रमुख देवी-देवताओं से लेकर छोटे, लोक देवी देवता तक की प्रतिमाएं देखी जा सकती हैं। यद्यपि ऐसी प्रस्तर प्रतिमाएं भीतरी हिमालय से लेकर निचले तराई वाले इलाकों तक में कहीं भी देखी जा सकती हैं जिनमें सीमांत क्षेत्र लाहुल के चिनरेजिङ् अर्थात् त्रिलोकनाथ से लेकर कांगड़ा के तराई वाले इलाकों के बाबा बालकनाथ तक शामिल हैं, एक विशिष्ट प्रतिमा विश्वविख्यात रूसी कलाकार निकोलस रोरिक के हाथों उनके कला-कर्म में ऐसी प्रतिबिम्बित हुई है कि उसे उनकी अनेक कलाकृतियों में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही रूपों में सहज ही चीन्हा जा सकता है। गुग्गा चौहान की इस प्रस्तर प्रतिमा को उनके यशस्वी सुपुत्र डा० स्वेतोस्लाव रोरिक ने भी अपने पिता श्री के रूप-चित्रण में अंकित किया है और यह प्रस्तर-प्रतिमा नग्गर (कुल्लू घाटी) स्थित उनकी आवास स्थली पर भी देखी जा सकती है। अनेक चश्मों के पानी को सिंहमुख, गजमुख अथवा नाग-मुख से प्रवाहित होते हुए देखा जा सकता है। यहां प्रस्तर-उत्कीर्ण का कार्य बड़ी दक्षता से हुआ है और इन्हें उस समस्त पहाड़ी क्षेत्र में देखा जा सकता है जहां पत्थरों की बहुतायत है।

प्रस्तर प्रतिमाओं में न केवल असंख्य देवी-देवताओं को उत्कीर्ण किया गया है बल्कि महलों और मन्दिरों की सज्जा के लिए अनेक पशु-पक्षियों, फूल-पत्तियों, वृक्ष-वल्लरियों को भी बड़ी कलापूर्ण एवं सजीव छवियां उभरी हैं। मण्डी, कुल्लू, कांगड़ा, चम्बा आदि जिलों में स्थित अनेक शिवालयों में आदमकद तथा लघुतर नन्दी देखे जा सकते हैं। देवी-मन्दिरों में सिंह की प्रतिमाएं वाहन के रूप में रहती हैं। अनेक शिखर शैली के प्रस्तर मन्दिरों में उनकी बाह्य भित्ति के आले आज बेशक खाली नजर आते हों लेकिन ऐसे बहुसंख्यक मन्दिर मौजूद हैं जिनके रथिकायुक्त बिम्ब अपने कलात्मक सौन्दर्य के लिए सहज ही चीन्हें जा सकते हैं। मन्दिर के पत्थरों अथवा काष्ठ पर उत्कीर्ण पत्रावली, ज्यामितिक चिन्ह, फुल्ले, गोमूत्रिका आदि से बनी सज्जा भी ध्यान आकृष्ट करती है। मण्डी नगर और कुल्लू घाटी में तो ऐसे कितने ही मन्दिर हैं लेकिन एक मन्दिर नदौण का गोसाईं शिवालय भी है जिनके द्वार–मण्डपों पर संगीत-प्रेमी गन्धर्व बालाओं की मनोहारी छवियां देखते ही बनती हैं।

यद्यपि पहाड़ी चित्रकला में लोक जीवन का बखूबी आलेखन हुआ है लेकिन अधिसंख्य पहाड़ी राजाओं के आश्रय में रंग-रेखाओं और रूप सौंदर्य की यह लयकारी लोक-कला की धरती से जुड़े रहने के बावजूद अपने विकास में जिस प्रकार एक शास्त्रीयता व विधान अर्जित करने में

सफल हो गई, उससे पहाड़ी चित्रकला को लोक-कला की अपेक्षा शास्त्रीय कला की ही श्रेणी में रखा जाना श्रेयस्कर लगता है। लेकिन ऐसी बात नहीं कि हिमाचल प्रदेश में पहाड़ी चित्रकला के विपरीत लोक चित्रकला के दर्शन ही नहीं होते हों। यदि हम अपने आस-पास देखें तो वहां भी लोक चित्रकारी की एक समृद्ध परम्परा नज़र आ जाती है। यद्यपि हमारे पहाड़ी प्रदेश में यह कला तीज त्यौहारों के प्रति अधिक उन्मुख नज़र आती है और उससे हट कर स्वतन्त्र रूप में उसका अधिक विकास इसलिए नहीं हो पाया कि यहां प्रदेश में वीभत्स प्रकृति से लोक-जीवन का संघर्ष अधिक सन्निकट रहा है।

लोक चित्रकला अधिकांशतः तराई के इलाकों में ही देखने में आती है। इस कला में लोगों के धार्मिक विश्वासों, आस्थाओं, आकांक्षाओं तथा उच्छवासों का ही प्रतिबिम्बन नहीं मिलता बल्कि नारी-सुलभ कला-मानस को भी अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। अनेकों ऐसे तीज, त्यौहार और पर्व हैं जिनके साथ जुड़ी पौराणिक गाथाएं एक सहज प्रतीकात्मक प्रतिफलन में घर, आंगन, दीवार दहलीज की सज्जा बन कर प्रकट होती हैं। जन्म-दिवस, अन्न-प्राशन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि मंगलमय अवसरों पर प्रकट होने वाली लोक-कला एक संस्कारगत आभिजात्य की परिचायक होती है। तीज-त्यौहारों की पृष्ठभूमि पर उभरने वाले कथा-तत्त्व के अतिरिक्त ये रंग-रेखाएं महिला वर्ग के जीवन के प्रति एक स्वाभाविक सौन्दर्य अभीप्सा तथा नैसर्गिक कला दृष्टि को भी रूपायित करती हैं।

बड़ा त्यौहार (नव वर्षारम्भ) तथा सायर, दीवाली तथा शिवरात्रि, गणेश चतुर्थी, हरितालिका तीज (चिड़ियों का व्रत), वीर पंचमी, बहुला चतुर्थी, पुड़षष्ठी, चैत्र नवमी, अहोई अष्टमी आदि कितने ही त्यहौार हैं जो अपने सुन्दर रूप, सुमधुर वाणी तथा भीनी महक के साथ घर के वातावरण को एक संस्कार देने की प्रक्रिया में मनमोहक बनाते हैं। ऐसे अवसरों के अल्पना-चित्र अर्थपूर्ण एवं आकर्षक होते हैं।

उदाहरणतः यहां मण्डी जनपद के चैत्र नवमी के अवसर पर उभरने वाला एक कथा-चित्र प्रस्तुत है जो मकोल (सफेद मिट्टी) में बरामदे के किसी हिस्से को गोबर अथवा लोष्टी (लाल मिट्टी) से लिपाई-पुताई कर अंकित किया जाता है। चित्र में कथा-पात्रों के अतिरिक्त सूर्य और चन्द्रमा तथा रास-लीला का आलेखन हुआ है। नवमी परमेश्वरी की पूजा और पारिवारिक मंगल-क्षेम की भावना को उजागर करने वाला यह चित्रांकन लोक-कलागत सहजता, सज्जा और सौन्दर्यानुभूति का द्योतक है।

चूंकि हिमाचल का बहुत सा भाग वनों से आच्छादित रहा है, अतः यह बहुत स्वाभाविक था कि जिन वन बहुल क्षेत्रों में मन्दिर बने, उनमें न केवल लकड़ी का बहुत प्रयोग हुआ हो बल्कि ऐसे प्रयोग में भवन-निर्माण अथवा मन्दिर-निर्माण कला भी एक विशिष्टता अर्जित कर ले। ऐसे मन्दिरों के निर्माण में जहां पहाड़ी कला-शिल्पियों ने परम्परागत शिखर शैली को एक नया रूप दिया, वहां काष्ठ-कला में भी आकृति अंकन, चित्र-सज्जा एवं अलंकरण के ऐसे सुन्दर नमूने प्रस्तुत किए जिन्हें देख कर कला-अभिरुचि वाला प्रेक्षक पहाड़ी कलाकार की आशंसा-प्रशंसा किए बिना

नहीं रह सकता। लोक-कला के इस दर्शन में यदि हमें परम्परागत तथा संस्कारगत आभिजात्य की विशिष्ट झलकियां भी मिले तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। लाहौल स्थित उदयपुर का मृकुला देवी मन्दिर काष्ठ-कला के अत्यधिक सुरुचिपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

लोक-कला के ही स्तर पर देखें तो मण्डी और कुल्लू का सराज क्षेत्र, चम्बा, शिमला और किन्नौर के वे स्थान, जहां वनों की बहुलता रही है, काष्ठ-कला की अत्यन्त सुन्दर छवियां देखी जा सकती हैं। लोगों के घरों में द्वार-शाखाओं पर, अन्न, कपड़े तथा बर्त्तन रखने के कोठों और कोठरियों पर अनेक सुन्दर ज्यामितिक आकार, फुल्ले, गोमूत्रिकाएं, पशु-पक्षियों की आकृतियां, फूल-पत्ते तथा वृक्ष-वल्लरियों का अंकन आज भी एक कला-थाती के रूप में देखे जा सकते हैं, यद्यपि लकड़ी की नक्काशी का काम अब समाप्तप्राय ही है।

हिमाचल के मन्दिरों में कतिपय ऐसे मन्दिर भी हैं जिन्हें हम पैगोडा शैली के अन्तर्गत रख सकते हैं। इन मन्दिरों के तीन अथवा चार छत्र होते हैं जो क्रमशः ऊपर की ओर आकार में लघु से लघुतर होते जाते हैं। ऐसे मन्दिर संख्या में अपेक्षतया बहुत कम हैं पर जहां भी हैं उनमें काष्ठ-कला की विशिष्ट छवियां देखने को मिल जाती हैं। ऐसे मन्दिरों में मनाली में हिडिम्बा का मन्दिर तथा नग्गर में त्रिपुरा सुन्दरी का मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लकड़ी में सुन्दर खुदाई का काम मण्डी जिले में छतरी नामक गांव के मगरु महादेव नामक मन्दिर में भी देखा जा सकता है जहां रामायण के अनेक दृश्य उत्कीर्ण हुए हैं।

अनेक धातु मूर्तियां, दीपों, घण्टों, बर्त्तनों तथा विविध शिल्पों में भी पहाड़ी लोक-कला की भरपूर छवि देखने को मिलती है लेकिन वह अपने-आप में एक अलग अध्ययन की अपेक्षा रखती है। इस सन्दर्भ में एक ऐसी लोक-कला का उल्लेख न करना एक बड़ी भूल होगी चूंकि उपयोगिता की दृष्टि से उसका लोक-जीवन के साथ सदियों से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। ये हैं मिट्टी के बर्त्तन। यद्यपि ऊंचे पहाड़ी इलाकों में लकड़ी और पत्थर के कतिपय बर्त्तन तो देखने में आते हैं पर चूंकि यहां की मिट्टी मृण्पात्रों तथा मृद्भाण्डों के उपयुक्त नहीं होती, अतः ऐसे बर्त्तन केवल तराई के इलाकों में अथवा घाटी क्षेत्रों में ही देखे जा सकते हैं। मिट्टी के इन बर्त्तनों के लिए किसी समय कांगड़ा ने बहुत नाम कमाया था।

यदि हम संसार भर की कलाओं पर दृष्टिपात करें तो यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मृद्भाण्डों तथा मृण्यपात्रों का बनाना प्राचीनतम तथा सार्वभौमिक कलाओं में से एक है। कुछ पर्वतीय क्षेत्रों को छोड़ कर मिट्टी सर्वत्र सहज सुलभ है। अलग-अलग स्थानों पर कुम्हारों के हाथों स्थानीय उपयोगियता के आधार पर इसे बहुविध रूप-आकारों में ढाला जाता रहा है। दैनिक प्रयोग में आने वाली ऐसी अनगिनत वस्तुएं हैं जो मिट्टी के माध्यम से सुलभ हुई हैं। यदि इन सभी वस्तुओं का कला के आधार पर आंकलन समुचित न भी हो तब भी इन्हीं में ऐसी बहुतेरी वस्तुएं मिल जायेंगी जिनका कलागत वैशिष्ट्य अर्थात् गढ़त, चित्रकारी, अलंकरण या सज्जा सहज ही ध्यान आकर्षित करती है। युग-युगों से कुम्हारों ने मिट्टी के बर्त्तन तथा अन्य वस्तुएं बनाने में न केवल जातिगत दक्षता ही अर्जित की है बल्कि मानव समाज के समस्त खान-पान, रहन-सहन आदि को भी अधिक सुविधायुक्त तथा सुसंस्कृत बनाने में अर्थपूर्ण योगदान दिया है।

मिट्टी के वर्त्तनों में घड़े की बात आती है तो पनघट का ख्याल आना स्वाभाविक है और पनघट तो हमारी ग्रामीण संस्कृति के सर्वाधिक सजीव केन्द्र रहे हैं। इन्हीं पनघटों पर मूक हृदयों को वाणी मिली है। आचार-विचार, गीत-संगीत, वाद्य-नृत्य की अद्भुत रस धाराएं फूट निकली हैं।

घड़ों की बिरादरी के अन्य सदस्यों को चीन्हें तो आकार-प्रकार की एक व्यापक विविधता नज़र आती है। घड़ा है तो घड़ौंची भी है। हण्डा-हण्डी, कुण्डा-कुण्डी, पारा-पारी, कटोरा-कटोरी, मरतबान, फूलदान, सुराहियां, दीये, तम्बाकू पीने की चिलमें आदि कितनी ही दैनिक व्यवहार की चीज़ें दिखाई दे पड़ेंगी जिन्हें सुन्दर बनाने में लोक-कला मानस ने बड़ा योगदान दिया है। अपने ही ग्रामीण परिवेश की ओर देखें। सुबह से शाम तक कौन सी बेला, मन्दिर से मरघट तक कौन सा स्थान, जन्म से मरण तक कौन सा अवसर ऐसा है जिसे कुम्हार के हाथों संस्कार न मिला हो और ज़रा सोचिए तो कौन सी वस्तु ऐसी है जो मंगलघट का स्थान ले ले ?

वास्तव में लोक-कला का क्षेत्र बहुत विस्तृत है जिसमें लोक-जीवन से सम्बन्धित दैनिक उपयोग की अनेक चीज़ों में भी लोक-कला मानस की अभिव्यक्ति मिलती है। ऐसी वस्तुओं में पहरावा, आभूषण, कशीदाकारी आदि सम्मिलित हैं। यदि हिमाचल के अपने पहरावे की ओर ही ध्यान दें तो वहां भी हमें लोक-कला के बहुत विशिष्ट आदर्श उपलब्ध होते हैं। पैर में पुलें, शरीर पर लपेटने व ओढ़ने के लिए शाल व पट्टू तथा सिर के धाटू या टोपी सभी परम्परागत कला-अभिरुचि की बड़ी विशिष्ट पहचान देती हैं। कुल्लू, मण्डी, रामपुर तथा चम्बा शाल-पट्टुओं के प्रसिद्ध उत्पादन केन्द्र हैं और इन वस्तुओं में जितनी फूल पत्तियों, ज्यामितिक आकारों व आकल्पनों, पशु-पक्षियों के मूर्त्त-अमूर्त्त अभिप्रायों की विविधता का परिचय मिलता है, वह हमारे पर्वतीय कला-मानस की स्व-अर्जित उपलब्धियां हैं।

कशीदाकारी के क्षेत्र में चम्बा के रूमालों ने पहाड़ी चित्रों के समान ही बड़ी ख्याति अर्जित कर ली थी और वास्तव में ये रूमाल चम्बा के नाम से बेशक ख्यात हुए लेकिन मण्डी, कांगड़ा आदि में भी इनका बखूबी प्रचलन रहा।

पहाड़ी जीवन में लोक-कलाकारों ने पहरावा, आभूषण, कशीदाकारी आदि सभी क्षेत्रों में अपना दखल रख कर नये कीर्तिमान स्थापित किए हैं। लाहुल-स्पीति के १३००० फुट की ऊंचाई पर बसे गांव से लेकर १२०० फुट के घाटी व मैदानी क्षेत्रों में पहरावे और आभूषणों में भी व्यापक विविधता नज़र आ जाती है लेकिन कुछ ऐसा अवश्य है जो पहाड़ी आस्मिता की कसौटी पर एक सामंजस्य का, अनेकता में एकता का बोध देता है। लोक-कला में किसी क्षेत्र विशेष की 'जीनियस' मुखरित होती है। पहाड़ी जन-जीवन के ऐसे अनेक अज्ञात तथा अल्पज्ञात प्रान्तर हैं जो कलाश्री से सम्पन्न होने पर भी अभी प्रकाश की अपेक्षा रखते हैं। अभी उनकी परख बाकी है।

जिला लोक-सम्पर्क अधिकारी,
सोलन (हि०प्र०)

कांगड़ा जन-पद की परम्पराएं-भूल रही हैं।

—डॉ० शमी शर्मा

कांगड़ा जन-पद की विशिष्ट परम्पराएं आदि काल से चली आ रही हैं। इनके पीछे उस ऋग्वैदिक आर्य संस्कृति की छाप है जो किसी समय आर्य जाति सप्तसिंधु घाटी में निवसित हुई थी। आर्यों के निरन्तर युद्धों में आर्येतर जाति अपने नेता शम्बर के नेतृत्व में पीछे हट गई थी। इस त्रिगंत भूमि पर दिवोदास आर्य जाती के नेता का अधिपत्य हो गया था। उस काल से ही कांगड़ा जनपद में अपनी लोक-संस्कृति और विशिष्ट परम्पराएं प्रचलित होती चली आई हैं।

घरों में सर्वप्रथम छोटी बालिकाओं को प्रातः उठ कर देव पूजा सामग्री जुटाना यहां पहाड़ी भाषा में 'संज चौका करना' अर्थात् देव पूजा के लिए बर्त्तन मांजना और गोबर से लेपन कर पवित्र स्थान पूजनोपयोगी बनाना होता था? राख से उन्हें मांजना, हरि दूर्वा, फूल इत्यादि लाने का प्रशिक्षण कुमारियों को शैशव से ही दिया जाता रहा है। हरी दूर्वा एकत्रित करना गणपति पर चढ़ाना। पुरुषों का कार्य नहा धो कर सन्ध्या वन्दना और देवता, ठाकुरों को स्नान करवाना, पूजन करना रहा है। पीढ़ियों पर्यन्त और इतिहास के कई राज्य परिवर्तन में भी ये विशिष्ट परम्पराएं एक रस बनी रहीं। पीढ़ियों से ये संस्कार धरोहर रूप में आगे से आगे चलते, एक रूप में आगे बढ़ते रहे हैं। स्वतन्त्रता पश्चात् हमने प्रगति करनी आरम्भ की अर्वाचीन युग में और वह संस्कृति छूटने लगी। विस्मय होता है, कि जब तक विदेशी शासन था तब तक तो मान्यताएं बनी हुई थीं किन्तु जब उनका निष्कासन हुआ तो ये मान्यताएं छूटने लगीं। नीचे पटड़े पर बैठ कर भोजन करना, अब भला नहीं लगने लगा। कुमारियों में देव पूजन, सामग्री संग्रह विस्मृत हो रहा है। पुरुषों को पूजा विधान दैनिक चर्या का प्रथम कृत्य भूल चुका है। फिर हम इस युग में क्या प्रगति कर पाये हैं जबकि हमारी संस्कृति हम से छूट रही है। संस्कार विस्मृत हो रहे हैं।

रास्ते या मार्ग का पूजन करना सुगृहिणियों और देवियों में प्रचलित था। प्रायः नव-विवाहिता लड़की सर्व प्रथम मार्ग पूजन कर उसका मोक्ष करती थीं। वह निरन्तर चौबाट तथा सार्वजनिक मार्ग पर छोटा सा लेपन कर गन्धाक्षत, धूप इत्यादि से पूजन करती थी। ऐसी भी धारणा है कि कुमारी को नारी बनने से पूर्व यह कृत्य करना परमावश्यक होता है।

कुमारियों को ऐपण डालने का प्रशिक्षण और प्रातः ऐपण डालने की परम्परा, भी यहां प्रचलित है। पिछले दशक से इसका प्रचलन कम होता गया है। सफेद मिट्टी गोलूएं से प्रौढ़ाएं कौमार्यावस्था में ही कन्याओं को इसका प्रशिक्षण देती थीं। घर के आंगन में कलात्मक ढ़ंग से रेखाएं खींच कर फूलाकार सज्जा कर के यह कला विकसित रही है। घर के अन्दर मुख्य कक्ष में

भी कितनी सफाई से ऐपण का रेखांकन किया जाता रहा है, जो सद्गृहस्थ का मांगलिक प्रतीक बन कर, दर्शक के सम्मुख उपस्थित होता रहा है। कालान्तर में फर्श, सीमैंट, चिपस आदि वाले कमरों में यह कला विलुप्त हो गई और हमारी लोक संस्कृति की यह कड़ी टूटती जा रही है।

कांगड़ा जन पद में 'पतरी डालने' की परम्परा भी प्रचलित है। कुमारियों की तो यह दैनिकचर्या होती है। प्रातः नहा धो कर एक गिलास में फूल पत्तियां एकत्रित करके, घर की देहलीज, आंगन और पूजा गृह में सफेद मिट्टी के गोल रेखांकन, पर तीन पत्तियां गन्धाक्षत पुष्प युक्त रखी जाती हैं और पूजा श्रद्धा भाव प्रदर्शित किया जाता है। यह सारा कृत्य एक सद्गृहस्थ की भावातमकता के साथ जुड़ा हुआ है। इतना ही नहीं वनस्पतियों, फूल-पत्तों का हमारे जीवन में कितना महत्व है, इस परम्परा से प्रकट होता है। पौधों की पत्तियां हमारे जीवन का अविभाज्य अंग हैं। उन का आंगन, गृह द्वार पर सश्रद्धा समर्पण मंगल कामना का निदर्शन है। यह युग परम्परा भी बिखरती प्रतीत होती है।

शुभ संस्कारों और मांगलिक कार्यों में शान्ति यज्ञ माला (पंच पल्लव) पांच प्रकार के पत्तों से घर के चारों ओर लगाई जाती है। यह परम्परा कांगड़ा जनपद में निरन्तर चलती जा रही है। इससे सद्-गृहस्थ की शोभा, सामाजिक, सुखद शुभ, आवास सूचित होता है। पंच पल्लवों में आम, पीपल, वट, पलाखें और औदम्बर का स्थान सर्वोपरि है। मंगल-घट, कुम्भ स्थापन में भी यही डाले जाते हैं।

प्राचीन काल से जन्म दिवस के अवसर पर कांगड़ा जनपद में दीवार पर जन्म दिन लिखने की प्रथा प्रचलित रही है। दीवार पर नाना विध रंगों से सज्जा की जाती है। लाल, हरा, पीला आदि रंगों से कलात्मक कृतियां फूल-पत्तियां चित्रित की जाती हैं। सद्गृहस्थ में भित्ती-कला की ये अनुकृतियां श्रेष्ठ मानी जाती हैं। कुशल सद्गृहणियां, सौभाग्य लक्ष्मियां इस कार्य को करतीं। इसके मध्य में घृत से सप्त वसुधाराएं लगाई जातीं। घृताक्त, सप्त वसुधाराएं श्री, आयु, समृद्धि की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। आज इस परम्परा में भी कमी आ रही है। आधुनिक आभिजात्य वर्ग अपनी पक्की पेंट युक्त दीवारों को इस सज्जा से भद्दा, कलुषित नहीं करना चाहता। श्री, लक्ष्मी की द्योतक ये लोक-संस्कृति, युग परम्परा, लेखन कला का भद्दापन उसे अखरता है। समय आने वाला है जब **"श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्या बहो रात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्, इष्णन्निषाण मुम्न इषाण सर्वलोकम्म इषाण"** आदि वेद सूक्त भी विस्मृत हो जायेंगे।

कांगड़ा जनपद में सद्गृहस्थी आंगन में तुलसी की स्थापना परमावश्यक होती है। तुलसी का पौधा नाना प्रकार के रोगों को दूर करता है। उसकी वायु स्वास्थ्य के लिए परमावयक होती है। तुलसी का पूजन स्त्रियों के लिए एक आवश्यक कृत्य माना जाता है। उसके साथ ही बाबे का थड़ा, ग्राम्य लोक-संस्कृति का एक अङ्ग है। चार कीलियां गाड़ कर, भगुए कपड़े से उस पर छाया कर दी जाती है। लिपा-पुता कितना स्वच्छ पवित्र थान होता है। कितनी श्रद्धा, भाव प्रवणता उसके साथ ग्राम्य जन-जीवन की जुड़ी हुई है।

कई स्थानों पर सैंकड़ों नाग चिन्ह, सर्पाकार रेखांकित पत्थर बियावान उजाड़ में पड़े होते हैं। कोई उन्हें वहां से नहीं उठाता। कोई भी उन्हें पैर नहीं लगाता। कोई समय अथवा युग था जब स्थान-स्थान पर नाग पूजा प्रचलित रही होगी। गृहस्थ के जन-जीवन, जन-मान्यताओं में ये सर्वोपरि रही होगी जिस के अवशेष ये हैं। आज वह परम्परा छूट चुकी है अथवा उसमें परिवर्तन है। केवल नाग पंचमी के दिन उन पर दूध, दही आदि चढ़ा दिया जाता हैं। नाग पंचमी वर्षा ऋतु बरसात में होती है। टूटे घड़े की ठीकरियां पीस कर लाल रंग और कोयले पीस कर काला रंग बना कर लाल-काले नाग रेखांकित किए जाते हैं। उन पर खीर और बलेई सश्रद्धा अर्पित की जाती है। उसी दिन पशुओं के खूंटे पूजे जाते हैं। खीर बलेई चढ़ाई जाती है। यह कांगड़ा जनपद की लोक-संस्कृति, परम्परा का एक मार्मिक दृश्य लिए हुए है।

उससे भी बढ़ कर आज के युग में सैरी का त्योहार है। तब नापित हाथ में नारियल, गलगल आदि किरनी में फूलों से सुसज्जित कर, रात भर चलता रहता है। लोग सैरी की संक्रान्ति को जी भर कर मीठे और नमकीन भटूरू बनाते हैं। अपनी शुभ कामनाएं प्रणाम करके अभिव्यक्त करते हैं। इष्ट मित्रों और सम्बन्धियों को भोजन करवाते हैं। सैरी का पूजन किया जाता है। कांगड़ा प्रदेश में यह विशिष्ट त्यौहार यहां की जन-संस्कृति और परम्परा का अपना निजी है।

पंच भीष्म एकादशी, जिसे हरि प्रबोधिनी एकादशी कहते हैं, से लेकर पांच दिन अधिक शुभ माने जाते हैं। उनमें पांच दिन दीये जलाना पुनीत कार्य है ऐसी लोगों की मान्यता है। हरित गन्नों, आंवलों की डालियों को चौकी के चारों खूंटों में बांध कर मण्डप तैयार किया जाता है। वेदिका बांधी जाती है। उसके अन्दर जगत्-पालक भगवान विष्णु की स्थापना की जाती है। उस लघु मन्दिर में गड़वी रख कर, एक छोटी थाली ऊपर धरते हुए, विष्णु को सिंहासन दिया जाता है और उनके सामने दो या चार संख्या में अहोरात्र दीये जला कर दीपदान किया जाता है। यह परम्परा कांगड़ा जनपद में प्रौढ़ाओं, वृद्धाओं में निरन्तर प्रचलित है। इसके साथ ही पांच दिन अधिष्ठात्री का फलाहार व्रत चलता है। पुरुष, स्त्रियां, लड़के, लड़कियां पांच दिन भजन कीर्तन, प्रवचन, उपदेशात्मक पौराणिक कथाओं के सुनने में व्यतीत करते हैं।

इन दिनों में कुछ ऐसा धार्मिक सा वातावरण होता है कि ये दिन बहुत ही सुखद व्यतीत होते हैं। शरद् ऋतु का आरम्भ होता है। बाल-वृद्ध सभी के मंगल गान, भजन कीर्तन में एक समां सा बन्ध जाता है। गृहिणियां गोलू (श्वेत मिट्टी) के ऐपण डालती हैं। उनके आस-पास रेखांकित कलात्मक कृतियां, काली मिट्टी बहुत ही करीने से लीप कर घर आंगन की सज्जा बनाई जाती है। उस आंगन को देखते ही मूर्त्तिमन्द ग्राम्य संस्कृति का दर्शन हो जाता है। इन्हीं दिनों में गृहस्थ के चूल्हे पर आंवले की डाली लटकाई जाती है और आंगन में तुलसी की क्यारी में गन्ना और आंवले की डाली एक साथ रोप दी जाती है। उसके ऊपर मौली (डोरी) और लाल लुहाण वस्त्र से शाखा सिर ढांप दिए जाते हैं। मानों कोई नवोढ़ा ससुराल जा रही है। कितना भाव प्रवण आंगन का दृष्य होता है। हो भी क्यों न, तुलसी विवाह के दिन जो हैं।

मकर संक्रांति से एक दिन पूर्व लोहड़ी का त्योहार होता है। इस दिन अंगीठी, चूल्हा लीप पोत कर, उसके आल बाल में गोलू (सफेद मिट्टी) के सितारे लगाने की लोक-परम्परा है। रात्रि के समय लकड़ियों के प्रज्जवलन पर वे चमकते हुए, प्रज्जवलित अग्नि का मानों स्वागत, अभिनन्दन करते हैं। वास्तव में यह अग्नि पूजा का ही त्यौहार है। उसमें ही रेयोंड़ी तिल, गुड़, चावल की आहुतियां ही जाती हैं जिसमें गुड़, मूली मिला कर तिलचौली की संज्ञा दी जाती है। पकवान पकाए जाते हैं। दूसरे दिन मकर संक्रांति के पुण्य पर्व पर ब्रह्म मूहूर्त में शीतल स्नान कर के अन्न दान और सूर्य पूजा, विष्णु रूप में की जाने की परम्परा है। भगवान् भास्कर मकर राशि में प्रविष्ट हुए हैं अतः यह कृत्य विशिष्ट रूप से त्रिगर्त प्रदेश में माना जाता है।

लोहड़ी से एक मास पूर्व लुक्कड़ी गान की लोक-रीति है। निम्न वर्ग की कुमारियां लुक्कड़ी (लोक-गान) गाती हैं। मासान्त के दिन लड़के हिरण बन कर हरण गान करते हैं। संक्रांति के दिन राजड़े (राजा हो) की गान परम्पराएं इसी पर्व के साथ कांगड़ा जनपद में निबद्ध हैं। अब इस में भी कुछ ढिलाई दिखाई दे रही है। इसी से पूर्व पौष मास में महीना भर चन्दरौलियां नाचती हैं। पता नहीं कहां-कहां की नर्तक टोलियां, डंडू और चन्दरौली का स्वांग रच कर भक्त मण्डली के साथ लोक-गीत, भेंट गान करते हुए, गांव पर गांव घूम डालते हैं। इसी से अन्न प्राप्ति कर ये लोग अपनी आजीविका अर्जित करते हैं। यह परम्परा लोक गान और लोक-नृत्य की केवल कांगड़ा प्रदेश में ही अपनी पीढ़ियों से चली आ रही है।

पंच भीष्म के दिनों में दीप विसर्जन की परम्परा भी स्त्रियों में प्रचलित है। नदी या कूल्ह के किनारे, घगरी चादर पहन कर सुसज्जित हो सुनारियां, भूषणालंकृत सजधज के साथ नदी में घास के बेड़े बना कर उनमें जलता दीप रख कर उन्हें बहा देती हैं। दीप प्रवहण की यह परम्परा 'बेड़े रड़ाणा' के नाम से प्रचलित है। सन्ध्या के झूटपुट में, सौंदर्य राशि वनितओं कुमारियों के समूह, नदी, कूल्ह तट पर कितना मोहक दृष्य उपस्थित करते हैं। बाल्यकाल में तो यह परम्परा रीति कई बार देखी, यौवन में भी कभी झांकी, किन्तु प्रौढ़ावस्था में अब यह कुछ ढीली सी ही दृष्टिगोचर होती है।

चैत्र में ढोलरू गान आरम्भ हो जाता है। कभी किसी का जीर्ण उतार वस्त्र ऊपर बन्धा, लाल डोरियों से सुसज्जित ढ़ोलकी लिए, डूमणा डूमणी दम्पति, स्त्री पुरुष यूगल कितने दूर-दूर तक यात्रा करते ढोलरू लोक गीत गाते हैं। कांगड़ा की ही एक मात्र यह युग परम्परा है। कितने ही गांव वह क्रमशः एक महीने में गा गा कर, अन्न प्राप्ति से अपनी आजीविका चलाते हैं।

होली से पूर्व त्रयोदशी अथवा चतुर्दशी को दंदोछ एक पौधे की पूजा सौभाग्या, पुत्रवती स्त्रियों में प्रचलित है। वे कामल लकड़ी के डंडे, गिल्लियां, लाल, नीले, काले डोरे डाल कर उस पर चढ़ाती हैं। गुड़ चने चढ़ाए जाते हैं। होली खेली जाती है। छालकर ये लकड़ियां रंगी चढ़ाई जाती हैं। पूजा की जाती है।

चैत्र और अश्विन के नवरात्र में दुर्गा सप्तशती का पाठ, हवन, दुर्गा पूजन, कुमारी कन्याओं के पूजन की परम्परा भी है। पुरुष दुर्गा पाठ करते हैं और स्त्रियां दुर्गा मन्दिरों में जाकर अपनी अर्चना समर्पित करती हैं।

वसन्त पंचमी से पूर्व, तृतीया को गौंतरी का त्यौहार सौभाग्या स्त्रियों में प्रचलित है। सुहाग का यह स्त्रियों का मंगलमय पर्व, आटे के गहने, मीठी मठियां तल कर पूजा जाता है और थाली पतिदेव को भेंट की जाती है। पतिश्रद्धा, पतिव्रता धर्म परायणता के संकल्प उसमें निहित होते हैं। षड़तिला एकादशी के दिन तिल के लड्डू बांटे जाते हैं।

श्रावण द्वितीय सप्ताह में मिंजरों का त्यौहार जल पूजन का होता है। सन्ध्या बेला में तले हुए भटूरू, पतरोड़े, पकोड़ू पकवान लेकर स्त्रियों, पुरुषों की टोलियां नदी के जल-प्रवाह के पूजन के लिए तट पर एकत्रित हो जाते हैं। लोक-गीतों का स्वर बरसात की नदी के षड़ज स्वर के साथ एक हो जाता। उस जन-जल स्वर लहरी में कितनी तन्मयता है। यह बस अनुभव की ही बात है, अभिव्यक्ति क्या करूं। बरसात तो है लोक त्यौहारों की। इन दिनों में ही शनिवार और सोमवार नाग स्थान और शिवालयों के होते हैं। गीत गाती बालिकाएं, युवतियां, नवोढ़ा, प्रौढ़ा साथ में लड़के-पुरुष एक साथ चलते है। सड़कें टूट पड़ती हैं। वे दृष्य भूलाए नहीं भूलते।

वर्षा ऋतु में स्त्रियों में कुछ विशिष्ट परम्पराएं प्रचलित हैं। सिंह सत्तें (सप्तमी), पूड़ छड़ (षष्ठी) क्रमशः भाईयों और सौभाग्य के दिन स्त्री समाज में मनाए जाते हैं। बच्छ द्वाह (गोवत्स-द्वादशी) गोवत्सा (काली गऊ बछड़े) की पूजा वात्सल्यता का दिन होता है। वर्षा ऋतु से पूर्व ग्रीष्म में वट सावित्री (बड़वांस) होती है। उस दिन आटे के पेड़ों से वट वृक्ष का पूजन स्त्रियां करती हैं। वट वृक्ष की परिक्रमा पीले सूत्र से लपेटती हुई करती हैं। वटविष्टित सूत को उतार कर उससे मंगलसूत्र वनाए जाते हैं जिन्हें पुरुष हाथ की कलाई में और स्त्रियां गले में पहनती है। पीपल के वृक्ष को पानी चढ़ाया जाता है। सौभाग्याएं सास, ननदों और प्रौढ़ाओं का चरण स्पर्श कर नतमस्तक होती हैं। चैत्र की संक्रांति कुमारियों का त्यौहार और रली पूजन प्रथा का प्रारम्भ होता है। प्रातःकाल ही इन बालिकाओं के झुण्ड गीत गाते, वन चिड़ियों की भांति खेतों में फूल चूनने के लिए बिखर पड़ते हैं। कुमारी कन्याएं एक महीना भर यह पूजन करती हैं। वैशाखी के दिन ये मिट्टी की मूर्तियां बाजे गाजे के साथ जल प्रवाहित की जाती हैं। पानी में डूबो दी जाती हैं। यह परम्परा एक मर्म भेदी करूण-कहानी लिए इस जन-पद में प्रचलित हुई है।

बावे का थड़ा, तुलसी का स्थान आंगन का आवश्यक अंग हैं। तुलसी के पौधे के बिना घर भूतवासा समझा जाता है। घर का एक कमरा ठाकुरों का पूजा गृह होता है। कितनी सुखद है ये युग परम्पराएं। समाज और गृहस्थ की स्मृद्धि इन पर निर्भर है। जन मानस में इन पर अटूट विश्वास, श्रद्धा होती है। जन जीवन में इनका महत्व सर्वोपरि है यह जन संस्कृति, लोक परम्पराएं समाज का प्राण हैं। भारतीयता की आत्मा है। खेद इस बात का है आज का युग इस ओर ध्यान नहीं दे रहा है। यह पीढ़ी अपनी वास्तविक प्रगति से भटकती जा रही है जो इस धरोहर को संवहन करने में उत्सुक नहीं है।

राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय परौर,
तहसील पालमपुर, जिला कांगड़ा (हि॰प्र॰)

देव सूमी

—सुखराम हिंगोराणी

हिमाचल के देवी-देवता बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रदेश के प्रत्येक क्षेत्र में इनके मन्दिर विद्यमान हैं इनके 'स्थान' बने हुए हैं। इन स्थानों पर भारी मात्रा में लोग पूजा अर्चना के लिए इकट्ठे होते हैं, मेलों का आयोजन किया जाता है। लोक-विश्वासों के कारण इन देवी-देवताओं की आज वैसी ही पूजा होती, इन पर आज भी उतनी ही श्रद्धा है जितनी सदियों पूर्व थी। हजारों श्रद्धालु आज भी अपनी 'मानता' (जिसे स्थानीय भाषा में चढ़ावा कहते हैं) लेकर, मनोकामना पूर्ण करने वाले तथा मानसिक एवं शारीरिक कष्टों से मुक्ति दिलाने वाले इन देवी-देवताओं के स्थानों पर जाते हैं।

प्रदेश के प्रत्येक गांव में देवी देवताओं के स्थान हैं जहां किसी खास दिन श्रद्धालु अपनी श्रद्धानुसार भेंट चढ़ाते हैं। अपने तथा अपने परिवार को प्रत्येक कष्ट से मुक्ति दिलाने के लिए प्रार्थना करते हैं। उसी दिन विशेष में मेले का आयोजन भी किया जाता है। कष्टों से मुक्ति प्राप्त कर नर-नारी प्रसन्नता से झूम उठते हैं और घण्टों नाचते रहते हैं जिसे नाटी नाचना भी कहा जाता है।

करसोग तहसील में भी इसी प्रकार की परम्परा है। इस क्षेत्र में कोई ऐसा गांव नहीं है जहां किसी देवी अथवा देवता का मन्दिर न हो। प्रत्येक गांव में वर्ष में एक अथवा दो बार देवी-देवताओं के स्थानों पर मेले लगाए जाते हैं। दूर-दूर से आकर लोग अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। जिन की मनोकामना पूरी हुई हो वे श्रद्धा अनुसार भेंट चढ़ाते हैं। करसोग तहसील में इसी प्रकार के छोटे-बड़े मेलों की संख्या वर्ष में सौ से भी अधिक है। लोहड़ी के दिन से इस प्रकार के मेलों का शुभारम्भ हो जाता है और दीवाली के एक माह बाद बूढ़ी दीवाली के साथ इस क्षेत्र के मेले समाप्त होते हैं।

करसोग क्षेत्र के विख्यात देवी देवताओं में ममलेश्वर महादेव, कामक्षा देवी, नाग माहू, नाग ककनू, चिन्डी की भगवती, पांगणे की आसन वाली भगवती, नाग धमौणी, देव तेबनी, पोखी का नाग देवता देव सूमी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस लेख में देव सूमी के सम्बन्ध में कुछ जानकारी पाठकों को उपलब्ध कराई जा रही है।

देव सूमी को जल प्रदान करने वाला देवता कहा जाता है। जब कभी बारिश नही होती तो लोग देव सूमी की अराधना करते हैं। अधिक वर्षा होने पर भी इनकी अराधना की जाती है। देव प्रसन्न होकर वर्षा प्रदान करते हैं और अधिक वर्षा होने पर उसे बन्द भी कर देते हैं।

वर्षा की कामना करने के लिए लोग मन्दिर में आते हैं। पुजारी धूप-दीप जला कर पूजा करता है। ढोल-नगारे बजाए जाते हैं। बजन्त्री भी देवता को प्रसन्न करने के लिए साज बजाते हैं। यह क्रम उस समय तक चलता है जब तक कि देवता अपने 'गुर' के शरीर में प्रवेश नहीं करता। गुर खेल उठता है जिसे स्थानीय भाषा में 'हिंगरना' कहते हैं। गुर जो कि 'चेले' के नाम से जाना जाता है, उम्र भर शादी नहीं कर सकता, चमड़े के जूते नहीं पहन सकता। कई गुर तो जमीन में हल तक नहीं चला सकते। गुर के शरीर में देवता प्रवेश करके अपने श्रद्धालुओं के साथ साक्षात्कार करता है, उनके प्रश्नों का उत्तर देता है और कष्टों से मुक्ति के उपाय बताता है।

देव सूमी का प्राचीन मन्दिर ठाकरठाणा पंचायत के सोमकोठी नामक स्थान पर है। देवता के नाम के कारण ही इस स्थान का यह नाम पड़ा है। इस प्राचीन मन्दिर के दर्शनार्थ करसोग से २३ कि०मी० बस की यात्रा कर 'चलथी' नामक गांव में पहुंचा जाता है उसके पश्चात् २ कि०मी० पैदल चलकर इस मन्दिर में पहुंचा जाता है।

मन्दिर का विशाल भवन दूर से ही दिखाई पड़ने लगता है। इस मन्दिर के दुमंजिले भवन के एक ओर देवताओं की मूर्तियां तथा रथ वगैरा रखे हुए हैं। अन्य दो दिशाओं में श्रद्धालुओं के बैठने के लिए स्थान बने हैं, चौथी दिशा के निचले भाग में सराय है जिसके ऊपरी हिस्से में भी लोगों के बैठने का स्थान है। मेले के दिन देवता के रथ को खूब सजाकर निकाला जाता है। चार व्यक्ति देवता को कंधे पर उठाकर नचाते हैं। देव सूमी के चार मेले आयोजित किए जाते हैं :—

वैशाख के छः तथा सात प्रविष्टे को रात-दिन चलने वाला दो दिवसीय मेला, महर्षि बाल्मीकि के जन्म दिवस पर चलने वाला एक दिवसीय मेला, आषाढ़ के २४ तथा २५ प्रविष्टे को दिन-रात चलने वाला मेला जो 'चलथी' गांव के समीप सुन्दरू जंगल में मनाया जाता है। इस अवसर पर ममलेश्वर महादेव भी पधारते हैं तथा बूढ़ी दीवाली को रात के समय मनाया जाने वाला मेला जो दीवाली के एक माह बाद होता है।

हर मेले के दिन, प्रत्येक संक्रान्ति के दिन तथा किसी विशेष दिन जब गुर को खेल आती है अर्थात् उसमें दैव्य-शक्ति प्रवेश करती है तब देवता की शक्ति उसके (देवता के) माध्यम से प्रकट होने का इतिहास, अन्य देवताओं से उसका सम्बन्ध आदि के विषय में देवता स्वयं गुर के माध्यम से कहता है।

देव सूमी के इतिहास तथा उसका अन्य देवी-देवताओं से सम्बन्ध का उल्लेख, जोकि गुर के माध्यम से कहा जाता है, इस प्रकार है :—

सदियों पूर्व देव सूमी का स्थान चिच्चौट तहसील के डाहर क्षेत्र के सुम्बली नामक गांव में था। उस समय सूमी को देव सुम्बली के नाम से जाना जाता था। देव का वहां भव्य मन्दिर था तथा उसकी बड़ी मानता होती थी।

किसी कारण देव सुम्बली अपना स्थान छोड़ कर नए स्थान की खोज में चल पड़े । सुम्बली से चल कर देव जोगी पत्थर, डिमरा बां होते हुए गतू गलई पहुंचे । यह गतू गलई में अपना स्थान बनाना चाहते थे । वहां पहुंच कर देवता ने चारों ओर नज़र घुमाई तो नीचे छत्री नामक स्थान पर मगरू महादेव नज़र आए । यहां रहना उचित न समझ कर वह भमार, ढैंशर, डहर, गरजूब, कनोच्छा (सभी चिच्चोट तहसील के गांव) होते हुए करसोग क्षेत्र के 'हिड़मी' नामक स्थान पर पहुंचे जहां हिड़मी देवी का स्थान था । हिड़मी देवी भी कुछ बातचीत करके अपना स्थान छोड़ कर इनके साथ चल पड़ी । दोनों मझास, खुलवाड़ा, शिकारी देवी, घुमरी,भरमेड, ऐदन होते हुए अपने स्थान की खोज में करसोग के ममलेश्वर महादेव के स्थान पर पहुंचे । ममलेश्वर महादेव जो कि शिव हैं, के यहां देव सूमी को वजीर मान लिया गया तथा उन्हें वहां रहने को स्थान दिया गया ।

ममलेश्वर महादेव के यहां देव सूमी रहने लगे । इसी स्थान पर आज देव सूमी खेलता है और अपने श्रद्धालुओं को आशीर्वाद देता है तथा उनका उपचार करता है । । कुछ समय ममलेश्वर महादेव के साथ रहने के पश्चात् सूमी देव अपने लिए अलग स्थान की खोज में निकल पड़े ।

हिड़मी देवी तथा सूमी देव सेरी, थमौण आदि स्थानों से होकर कुल्लू के बैना, बाड़ी, बिंश स्थानों पर जब देवी देवता के रहने की इच्छा न हुई तब दोनों फिर करसोग क्षेत्र के लिए चल पड़े । चुवासी गढ़ होते हुए ये 'देव डिब' स्थान पर पहुंचे । यह स्थान उन्हें पसन्द आया अत: वहीं रहने का निश्चय कर हिड़मी तथा सूमी ने अपनी शक्ति से अपने रहने के लिए एक विशाल भवन तैयार किया । यह स्थान करसोग तहसील की पोखी पंचायत में है ।

डिब एक बड़ा गांव था जहां १८ जातियां तथा १२ वर्ण निवास करते थे । यहां देव तथा देवी की बड़ी मानता होने लगी । कहते हैं एक दिन एक कुम्हार की पत्नि ने अपने मासिक धर्म के कपड़े धोकर मन्दिर की छत पर सूखने के लिए डाले । देवता को कुम्हारी के इस कृत्य पर बड़ा क्रोध आया और अपना स्थान छोड़कर दूसरे स्थान की तलाश में चल दिए । कुछ दूरी पर कथराई नामक स्थान पर आकर सूमी ने क्रोध में कहा कि वह किसी प्रकार की छुआ-छूत सहन नहीं कर सकता । क्रोध के कारण देव ने अपने हाथ में पकड़े छड़ को जमीन पर गाढ़ दिया । गज जिसे देवताओं की निशानी माना जाता हैं, जैसे ही जमीन पर गढ़ा वैसे ही देव सूमी का विशाल भवन जो डिब में बना हुआ था, मिट्टी में मिल गया । मन्दिर के भवन के साथ-साथ सारा डिब गांव भी पृथ्वी में समा गया । आज इस स्थान पर सिर्फ पानी की एक बावड़ी है । जिस क्षण डिब नष्ट हुआ देव सूमी भी धरती में समा गया ।

इस घटना के काफी समय बाद उसी क्षेत्र (ठाकरठाणा पंचायत) के देलग नामक गांव में, जो कि पंडितों का गांव है, एक पंडित के डुगड़ा नामक खेत में एक हरिजन कोली काफी यत्न करने के पश्चात् भी हल को खेत के बीच चला पाने में असमर्थ था । खेत के मालिक ने जब यह माजरा देखा तो क्रोध में आकर स्वयं खेत के बीच हल चलाने का प्रयत्न करने लगा । पर जब बैल बजाए

बीच के किनारों की ओर भागने लगे तो पण्डित ने हल को ज़मीन में गाड़ दिया ताकि बैल दूसरी दिशा में न जा सकें। जब हल में लगी लोहे की छड़ का नुकीला भाग ज़मीन में धंस गया तो बैल आगे न बढ़ सके। मालिक, मज़दूर दोनों ने बैलों को आगे बढ़ाने की कोशिश की परन्तु नाकामयाब ही रहे तो मऊबूरन उस स्थान को खोद कर हल निकालने की चेष्टा की। खुदाई करने पर हल का फ़ाल एक अष्टधातु की मूर्ति से फंसा हुआ मिला। उस मूर्ति को भी खोदकर निकाला गया। मूर्ति के निकलने के पश्चात् बैल ज़मीन के मध्य भाग में आसानी से हल खींचने लगे खेत के मालिक ने इसे एक साधारण मूर्ति समझ कर घर में रख लिया। मूर्ति की ठोडी के पास फ़ाल का निशान लग गया था। बाद में उस मूर्ति को एक छोटे से मन्दिर में रख लिया और पूजा जाने लगा। वहां के लोगों में से किसी को भी मालूम नहीं था कि यह मूर्ति ज़मीन में कैसे आई और किस की है।

देलग गांव के पास ही एक चरागाह थी जहां गांव के ग्वाले पशु चराते थे इनमें एक बालक भी अपने पशु यहां लाता था। उस बालक की एक गाय ने घर में दूध देना बन्द कर दिया। बालक की मां कुछ दिन तो परेशान रही उसने सोचा कि दूसरे ग्वाले हेरा-फेरी करते होंगे और लड़के की आंख बचा कर गाए को दूह लेते होंगे। उस औरत ने स्वयं जाकर गाएं चराने का निश्चय किया। बालक भी मां के साथ-साथ चल पड़ा। पशु चरने लगे, ग्वाले खेलने लगे, परन्तु उस औरत का ध्यान उसी गाए पर था जो घर में आकर दूध नहीं देती थी। कुछ देर बाद वह गाय झाड़ियों की ओर चल पड़ी। वह औरत और बालक भी गाए का पीछा करने लगे। एक स्थान पर आकर गाए रुक गई। उसके स्तनों से अपने आप दूध नीचे पड़ी पिण्डी में गिरकर समाने लगा। औरत ने सोचा कि कोई राक्षस पिण्डी का रूप धारण कर उसकी गाय का दूध पी रहा है। उसे बहुत गुस्सा आया और हाथ में लिए दराट का उस पिण्डी पर वार कर दिया। जैसे ही दराट ने पिण्डी का छुआ वैसे ही औरत, उसका बच्चा और गाए पृथ्वी में समा गए। पर इस घटना का किसी को पता न चला। औरत के पति ने अपनी बीवी, बच्चे और गाय की बहुत तलाश की पर उसे कोई भी जानकारी हासिल नहीं हो पाई। एक रात उस आदमी को सपने में एक देवता ने दर्शन दिए और कहा— मैं देव सूमी हूं मेरी मूर्ति फलां पण्डित के घर में है और मेरा स्थान चरागाह के बाहर झाड़ियों में है जहां मेरी एक पिण्डी पड़ी है। तुम्हारी बीवी ने मेरा अपमान किया था। इसी कारण मैंने उसे तुम्हारे बच्चे और गाय को अपनी पिण्डी के नीचे दबा दिया। अब यदि सारे गांव वासी उन झाड़ियों वाली जगह में मेरा मन्दिर नहीं बनाएंगे तो मैं सारे गांव को नष्ट कर दूंगा। देव सूमी ने बताया कि झाड़ियों में चींटियों द्वारा बनाया एक आकार दिखाई देगा। उसी आकार में मन्दिर का निर्माण करना। यदि चींटियां न मिले तो मुझे गल्त समझना और मन्दिर का निर्माण मत करवाना। वह व्यक्ति गांव वासियों के साथ उस स्थान पर पहुंचा तो उसे पत्थर की पिण्डी दिखाई दी। उसने बताया कि यही वह पिण्डी है जिसके नीचे उसकी पत्नी, पुत्र और गाए समाई है। गांव वालों को विश्वास नहीं हुआ। तब उसने बताया कि इन्हीं झाड़ियों में चींटियों द्वारा मन्दिर का आकार बना हुआ दिखाई देना चाहिए। झाड़ियां काटी गई तो वहां पर भारी मात्रा में चींटियां दिखाई दीं जो एक चकोर दायरे में घूम रही थीं। सभी लोगों को उस व्यक्ति के स्वप्न पर यकीन आ गया।

शीघ्र ही मन्दिर का मन्दिर का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। मन्दिर का भवन बनते ही पिण्डी के पास से पानी का एक चश्मा फूट पड़ा। आज भी सारा साल इस चश्मे से पानी निकलता रहता है।

मन्दिर का वह प्राचीन भवन तथा बाद में बनाई गई देवता की विशाल कोठी आज भी विद्यमान है। लोगों को देव सूमी पर अपार श्रद्धा एवं विश्वास है। पहले इस गांव में पानी की बड़ी कमी महसूस की जाती थी पर मन्दिर के निर्माण के पश्चात् फिर कभी भी यह कमी अनुभव नहीं हुई। देव सूमी तथा देवी हिड़मी की आज भी पूजा होती है तथा इन्हें पति पत्नी समझ जाता है।

सुम्बली से आकर देव सोमाकोठी रहने लगा। देव सूमी में अपार श्रद्धा रखने वाले सुम्बली निवासी आज भी उसे अपने यहां ले जाने की इच्छा रखते हैं। उन्होंने अपने गांव में देव सूमी की मूर्ति स्थापित कर रखी है परन्तु उनकी इच्छा है कि देव का रथ एक बार उसके गांव में आए। इसी इच्छा को लेकर गांव वासी कई बार सोमाकोठी के कारदारों (जो देवता के मन्दिर का कारोबार सम्भालते हैं) के पास आए पर हर बार उन्हें निराशा ही हाथ लगी।

हरेक की मनोकामना पूरी करने वाले, वर्षा प्रदान करने वाले देव सूमी और शक्ति की प्रतीक देवी हिड़मा के साथ कुछ अन्य देवी-देवता भी इस मन्दिर में निवास करते हैं जिनमें कुछ तो देव सूमी के मित्र हैं और कुछ उनके अधीनस्थ। इनमें कुछेक का विवरण इस प्रकार हैं :—

नाग सुन्दरू :

इनके बारे में कहा जाता है कि यह नाग देवता माऊ (मधु मक्खी) के रूप में शुषण नामक स्थान से यहां आए थे। यहां आकर इन्होंने देव सूमी की अधीनता स्वीकार की और यहीं निवास करने लगे। नाग सुन्दरू और देव सूमी में यह समझौता हुआ कि दोनों एक दूसरे की बात मानेंगे। इसी आधार देव सूमी ने अपना कुछ क्षेत्र, चगोड़ी से ठाकरठाणा तक तथा उसके साथ वाले विशाल वन को नाग सुन्दरू को दे दिया। इसी कारण इस जंगल का नाम सुन्दरू जंगल पड़ गया। इसी जंगल के बीच में नाग सुन्दरू का छोटा सा मन्दिर भी है। नाग का स्थान मन्दिर सोमाकोठी में भी है। जब कभी भी देव सूमी का रथ निकलता है तो नाग सुन्दरू का रथ भी उनके साथ होता है। नाग की भी बहुत मानता है तथा इनका अपना अलग गुर है।

देव द्वाली :

इसके बारे में विख्यात ही है कि यह देवता भगवान शिव ही हैं। कुछ लोग इन्हें शिवजी का वज़ीर कहते हैं। देव द्वाली का अपना एक विशाल मन्दिर करसोग तहसील का खण्चोग पंचायत में द्वाल के स्थान पर है। इस स्थान का द्वाल नाम देवता के नाम से ही पड़ा है। यहां देव द्वाली का विशाल भवन है तथा यहां लोग दूर-दूर से दर्शनों के लिए आते हैं। कहा जाता है कि मानसिक कष्टों तथा जादू-टोणों से मुक्ति दिलाने के कारण देव सर्व विख्यात हैं। यहां आकर सभी प्रकार के भूत-प्रेत भाग जाते हैं। इस स्थान पर वर्ष में दो बार मेलों का आयोजन होता है। इसी देव का एक 'मोरा' (मूर्ति) देव सूमी के यहां भी रहता है। इनका गुर खेलता भी है और भूत-प्रेत आदि का इलाज भी करता है। देव द्वाली और देव सूमी में मित्रता का सम्बन्ध माना जाता है।

बसाहरा :

यह देव सूमी का अधिकार मान उनकी चाकरी करता है। इसका अपना गुर तो है पर रथ नहीं है।

कालेबीजे :

यह देव सूमी की अधीनता में रहता है।

बसारू :

यह भी देव सूमी के अधीन है तथा इसका अपना गुर है।

ढवारची भरभक्ष, जंगल मुगल, चुली डिब्ली, देवता देव सूमी के मन्दिर में रहते हैं। इनका स्थान मन्दिर के बाहर है। इनके बारे में विश्वास है कि ये कई प्रकार की विपदाओं से रक्षा करते हैं। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के छोटे-मोटे देवता यहां रह कर लोगों की रक्षा करते हैं।

मेले के समय दूर-दूर से लोग आकर अपनी श्रद्धानुसार यहां भेंट चढ़ाते हैं। मन्दिर के नाम पर काफी सम्पत्ति है। देवता की आय अनाज के रूप में भी होती है। यहां देवता की ओर से प्रत्येक जरूरतमन्द आदमी को अनाज उधार दिया जाता है जो फसल तैयार होने पर वापिस ले लिया जाता है।

इसी मन्दिर के भवन में आज-कल लोगों के सहयोग से मुरम्मत कार्य चल रहा है। इस कार्य के साथ-साथ देवता के आभूषण बनाने की भी योजना है जिस के लिए चन्दा इकट्ठा किया जा रहा है।

खण्ड प्रचार कार्यकर्ता,
लोक सम्पर्क विभाग,
करसोग, जिला मण्डी (हि०प्र०)

प्राचीन हिमाचल में
शिक्षा, लिपि, भाषा और साहित्य का विकास

—लालता प्रसाद पाण्डेय

शिक्षा :

प्राचीन हिमाचल में शिक्षा के उद्देश्य, पाठयविषय, केन्द्र और प्रणाली प्रायः वही थे जो उस समय भारत के उत्तरी भाग में प्रचलित थे। इस क्षेत्र में काफी पहले से वैदिक संस्कृति का प्रसार हो गया था। इस क्षेत्र से लगे हुए मैदानी भाग में आर्य संस्कृति का प्रधान केन्द्र स्थित था। अतीत में गुरूकुल प्रणाली यहां भी प्रचलित जान पड़ती है, जिसमें विभिन्न सांस्कृतिक केन्द्रों में कुछ पढ़े-लिखे आचार्य अपने पास विद्यार्थियों को रख कर पढ़ाते लिखाते थे। गुरू को उपाध्याय और शिष्य को अन्तेवासी कहते थे जैसा कि उपनिषदों या अन्य वेदांग ग्रन्थों से ज्ञात होता है। पाठ्य विषयों में प्रधानतः व्याकरण और अन्य वैदिक विषय रहे होंगे, जैसा कि हमें सूत्र साहित्य से मालूम होता है लेकिन यह सुविधा केवल कुछ को ही थी। जाहिर है कि राजघरानों या प्रमुख व्यापारियों तथा विभिन्न प्रकार के सरकारी अफसरों के ही पुत्र इस प्रकार की शिक्षा पाते थे और ब्राह्मण वर्ग के लोग पेशे के रूप में शिक्षा प्राप्त करते थे। विभिन्न राजाओं के लड़के सम्भवतः धनुष विद्या भी सीखते थे, जो परिवार वाले ही समय-समय पर सिखाते थे। आयुर्वेद शिक्षा का दूसरा प्रमुख विषय रहा होगा, जो तत्कालीन उच्च शिक्षा केन्द्रों का एक प्रमुख विषय था। तक्षशिला विश्वविद्यालय में यह पढ़ाया जाता था, जो भारत के इस क्षेत्र से बहुत दूर नहीं स्थित था। मौर्य-काल में और उसके पहले भी यह एक विकसित शास्त्र था, जिसका मानव-जीवन में बड़ा योगदान था। इस विषय की वृद्धि बौद्ध भिक्षुओं ने भी की थी, जो इस क्षेत्र में महात्मा बुद्ध के जीवन काल में ही आ गए थे। उन्होंने मैदानी शिक्षा, लिपि तथा अन्य अनेक विद्याओं का इस क्षेत्र में प्रसार किया था। चिकित्साशास्त्र और विशेष करके शल्यचिकित्सा कांगड़ा क्षेत्र में मध्यकाल में विशेष रूप से विकसित और प्रसिद्ध थी। वर्णन मिलता है कि कटी नाक का आपरेशन यहां बड़ी सफलतापूर्वक किया जाता था। सम्भवतः यह विद्या इस क्षेत्र में वहां के लोगों को पीढ़ी दर पीढ़ी उत्तराधिकार में मिली और मध्यकाल तक जीवित रही। वास्तव में बौद्ध बिहार जिनमें हजारों की संख्या में बौद्ध-भिक्षु रहते थे, इस विद्या के प्रधान केन्द्र थे और ऐसी विद्याएं गुरू अपने कुछ योग्य और सुपात्र शिष्यों को पढ़ाता और बताता था। अन्य विद्याओं में शिल्पशास्त्र और स्थापत्यशास्त्र प्रमुख थे, जो इस क्षेत्र में भी पढ़ाए और सिखाए जाते थे। यह भी उपर्युक्त विषयों की तरह गुरू द्वारा कुछ ही लोगों को बताया और सिखाया जाता था। सम्भवतः इसी के परिणाम स्वरूप इस क्षेत्र में अनेक मूर्तियों और मन्दिरों, स्तूपों तथा बौद्ध विहारों का निर्माण किया गया। यहां के प्राचीन नगर ऐसे ही कुशल एवं प्रशिक्षित शिल्पकारों की हस्त निपुणता के परिणाम थे, जिनके भीटे हिमाचल के विभिन्न भागों में मिलते हैं और जिनके खण्डहर कला के प्रशिक्षण का प्रमाण उपस्थित करते हैं।

वास्तव में प्राचीन काल में शिक्षा के दो या तीन प्रकार के प्रमुख केन्द्र हुआ करते थे। परिवार शिक्षा का प्रथम प्रधान केन्द्र था, जिससे गुरुकुल-प्रणाली का जन्म हुआ। विभिन्न प्रकार के महान विद्वानों या कलाविदों के नए छात्र जाकर शिक्षा प्राप्त करते थे या अन्य कलाएं सीखते थे। बाद में विभिन्न बौद्ध विहार शिक्षा के प्रधान केन्द्र बने। इस क्षेत्र में कई स्थानों पर बौद्ध विहार बनवाये गए थे। यहां बौद्धधर्म एवं दर्शन की शिक्षा तो दी ही जाती थी लेकिन बौद्ध भिक्षु एवं विद्वान अन्य विषयों को भी पढ़ाते थे। लिपि और भाषा का अध्ययन और अध्यापन यहां होता था। आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित तथा अन्य कलाएं अध्ययन-अध्यापन के अन्य प्रमुख विषय थे, जिन्हें प्राचीन बौद्ध विद्वानों ने इस क्षेत्र में लोकप्रिय बनाया।

विभिन्न मन्दिर प्राचीन काल में शिक्षा के प्रचार के दूसरे प्रमुख केन्द्र थे। इनमें पुरोहित एक सुशिक्षित या अर्द्धशिक्षित व्यक्ति होता था जो अपने आस पास के लोगों में शिक्षा बिखेरता था। हिमाचल में कुल्लू, चम्बा, कांगड़ा तथा सिरमौर के क्षेत्रों में ऐसे अनेक मन्दिर विद्यमान थे, जिन की सूचना हमें उनके खण्डहरों से मिलती है या उनका उल्लेख यहां से प्राप्त अभिलेखों में हुआ है या विदेशी यात्रियों ने उनका उल्लेख किया है। ह्वेनसांग लिखता है कि कुल्लू और स्रुयून के संघाराम और देव मन्दिर विद्या के प्रधान केन्द्र थे। निर्मण्ड से प्राप्त अभिलेख में लिखा है कि वहां अथर्ववेद के अध्ययन और अध्यापन में लगे ब्राह्मण रहते थे, जिन की आजीविका के लिए किसी समुद्रसेन नामक राजा ने एक ग्राम दान में दिया था। ऐसी ही रचनाएं चम्बा और कांगड़ा से प्राप्त अभिलेखों से भी मिलती हैं। वास्तव में विद्या एवं संस्कृति के विकास एवं विस्तार के लिए राजाओं एवं प्रशासकों द्वारा अग्रहार दान का दिया जाना प्राचीन भारत में विशेष रूप से प्रचलित था, जिस की सूचनाएं तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व से ही मिलने लगती हैं। गुप्तों के काल में, हर्षवर्द्धन के समय में और प्रतिहारों, गहडवालों तथा चौहानों के काल में यह प्रथा और भी विकसत होती रही। बाद में हिमाचल में भी यह बड़ा प्रचलित हो गया जिस की सूचनाएं हमें कुल्लू और चम्बा से प्राप्त मध्यकालीन अभिलेखों में मिलती हैं।

वास्तव में राज्य या विभिन्न समृद्ध व्यापारिक परिवार ही दान देने में समर्थ थे, अतएव उनकी सहायता एवं सहयोग से शिक्षा का प्रचार हो सका। उन्होंने सांस्कृतिक विकास में प्राचीन काल में बड़ा योगदान दिया। हर राज घरानों में पुरोहितों, पंडितों तथा वैद्यों को शरण दिया गया। कभी तो उनकी जरूरत उनकी पूजा-विधि में पड़ी और कभी पढ़े-लिखे विद्वानों की अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए स्थान एवं धन देना पड़ा और कभी राज-प्रशासन में पढ़े-लिखे लोगों को लगाना पड़ा। ऐसे सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक कार्यों में उन्हें ज्योतिषियों की भी जरूरत पड़ी। अतएव विद्याओं और विद्वानों के विकास के लिए प्रोत्साहन राजवंशों और राजघरानों को देना अनिवार्य हो गया। समाज को सुचारु रूप से चलाने की जिम्मेदारी सम्राटों और प्रशासकों पर थी। अतएव विभिन्न विद्यालयों एवं विद्या तथा शिक्षा-केन्द्रों को किसी भी रूप में और किसी भी प्रकार से चलाना उनका कर्त्तव्य था।

इस क्षेत्र में प्राचीन काल में स्थापित और विकसित किसी उच्च शिक्षा-केन्द्र की सूचना हमें नहीं है। हो सकता है कि कांगड़ा, कुल्लू, चम्बा और सिरमौर के विभिन्न प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्रों

या नगरों में उच्च-शिक्षा की व्यवस्था रही हो, जिसकी सूचना हमें नहीं है। वैसे निकट रूप जलन्धर और थानेश्वर आदि स्थानों में यहां के राजकुमार आकर शायद ऊंची शिक्षा प्राप्त करते रहे हों। तक्षशिला, नालन्दा, वलभी और विक्रमशिला के प्राचीन विश्व विद्यालयों में भी यहां से विद्यार्थी जा सकते थे और विभिन्न प्रकार की विद्या सीख सकते थे, लेकिन यह केवल धनी एवं राजघरानों के लड़कों के लिए ही सम्भव था। शेष जनसंख्या ऐसे स्थानों में जाकर शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकती थी, क्योंकि इसके लिए न तो उनके पास साधन थे और न प्राचीन काल में इस दृष्टि से राज प्रोत्साहन की ही परम्परा थी। यह क्षेत्र वैसे भी यातायात और आवागमन के साधनों से सदैव हीन और वंचित रहा है, अतएव बाहर दूर जाकर साधनहीन गरीब लड़कों को शिक्षा प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

लिपि :

भारत के अन्य कुछ भागों की तरह प्राचीन काल में इस क्षेत्र में दो लिपियां प्रचलित थी — ब्राह्मी और खरोष्ठी, जिनका ज्ञान हमें प्राचीन अभिलेखों और सिक्कों के माध्यम से होता है। इनमें ब्राह्मी अधिक प्रिय और प्रचलित मालूम होती है, क्योंकि हिमाचल के हर भाग से इस लिपि में लिखाए अभिलेख मिलते हैं, जिनकी संख्या नगण्य नहीं है। इसमें लिखा सबसे प्राचीन अभिलेख कांगड़ा जिले में स्थित पत्थर नामक स्थान से मिला है, जो धर्मशाला से लगभग बारह मील दूर स्थित है। विद्वानों ने इसे तीसरी सदी ई०पू० में लिखाया गया मानते हैं, क्योंकि इसमें अशोक के काल में प्रचलित ब्राह्मी के अक्षर मिलते हैं। वास्तव में इस समय अशोक ने अपने धर्मादेशों और प्रशासन-आदेशों को अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों में चट्टानों, शिला-खण्डों या स्तम्भों पर लिखवाया। उस क्षेत्र-विशेष में प्रचलित लिपियों और भाषा को प्रयुक्त किया। यहां यह लेख एक चट्टान पर लिखवाया गया है और इसमें ब्राह्मी और खरोष्ठी दोनों लिपियों का प्रयोग किया गया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि इस समय इस क्षेत्र में वे दोनों लिपियां प्रयोग में लाई जाती थीं। इस तथ्य के अन्य अनेक प्रमाण भी हैं। इसी क्षेत्र में इन दो लिपियों में लिखाया गया दूसरा अभिलेख मिला है, जिसे द्वितीय शताब्दी ई० में रखा जाता है। यह लेख धर्मशाला से पूर्व चार मील दूर स्थित कन्हिआरा नामक स्थान पर प्राप्त एक शिलाखण्ड पर लिखाया गया था। इसमें एक बौद्ध विहार का उल्लेख है, जिसका नाम कृष्ण विहार था। इससे साफ जाहिर है कि इन विहारों की सहायता से लिपि और भाषाएं विकसित हो रही थीं।

इसी तरह ईसवी सन् की पूर्व और बाद की शताब्दियों में इन क्षेत्रों में विकसित राज्यों अर्द्ध गणराज्यों के सिक्के भी लिपि और भाषा के इतिहास निर्माण में हमारी मदद करते हैं। प्राचीन त्रिगर्त जनपद में प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता था। इससे स्पष्ट है कि कांगड़ा क्षेत्र में ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा पांचवीं-चौथी शताब्दी ई०पू० में प्रचलित थी। यही प्रमाण उदुम्बरों के सिक्कों से भी मिलता है क्योंकि इन पर भी ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों में छोटे-छोटे अभिलेख लिखे हुए हैं।

यही स्थिति हिमाचल के कुल्लू और शिमला–सिरमौर क्षेत्रों की भी थी। कुल्लू से प्राप्त कुलूत राजा वीरयश के एक सिक्के पर भी यही लिपि और प्राकृत भाषा मिलती है। कुनिन्दों के

सिक्कों से भी यही स्थिति ज्ञात होती है। उनके सिक्के, जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है, सतलुज नदी से पूर्व शिमला–सिरमौर तथा कुमायुं–गढ़वाल आदि क्षेत्रों से मिले हैं। इस क्षेत्र में भी ब्राह्मी लिपि बहुत प्राचीन काल से प्रचलित थी जैसा कि अशोक के शिलाभिलेख से मालूम होता है। काल्सी नामक स्थान से एक अभिलेख मिला है, जो हिमाचल के ठीक पूर्वी सीमा पर स्थित एक प्राचीन व्यापारिक, प्रशासनिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र था। कुनिन्दों के सिक्कों पर ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों का प्रयोग हुआ है। इससे साफ जाहिर है कि ये दोनों लिपियां इस क्षेत्र में प्रचलित थीं या उनके राज्य में दोनों लिपियों के जानने वाले रहते थे। ऐसा लगता है कि कांगड़ा और कुल्लू से लगे क्षेत्रों में खरोष्ठी लिपि जानने वाले थे और सिरमौर–गढ़वाल क्षेत्रों में ब्राह्मी लिपि का प्रचार था। यही स्थिति सम्भवतः सतलुज नदी से पूर्व पहाड़ी भाग से लगे मैदानी भागों की भी थी।

धीरे-धीरे खरोष्ठी लिपि का इस क्षेत्र में भी पतन हो गया, जिस का प्रारम्भ कुनिन्द सिक्कों के दिनों से ही हो गया था। यह स्थिति तीसरी शताब्दी ई० के मध्य की मालूम पड़ती है। कुनिन्दों के अधिकांश सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि ही मिलती है। बाद में विकसित योधेयों के सिक्कों से यह विकास अधिक स्पष्ट हो पाता है, क्योंकि उनके सिक्कों पर जो तीसरी चौथी शताब्दी में चलाये गये, ब्राह्मी लिपि ही मिलती है। उनके प्राचीन सिक्कों पर ब्राह्मी के साथ दूसरी तरफ खरोष्ठी में लेख लिखाये जाते थे, क्योंकि पंजाब और इस पहाड़ी भाग के कांगड़ा क्षेत्र के कुछ हिस्से सम्भवतः उनके अधिकार क्षेत्र में स्थित थे। धीरे-धीरे ब्राह्मी लिपि उभरती दिखती है, क्योंकि योधेयों की मोहरों पर इसी लिपि में लेख मिलते हैं और खरोष्ठी प्रायः लुप्त होती जाती है। चौथी सदी ई० में गुप्तकालीन ब्राह्मी के अक्षर उन पर मिलते हैं।

गुप्तकालीन हिमाचल में खरोष्ठी में लिखाया कोई अभिलेख उसके किसी भी क्षेत्र से नहीं मिलता है। इस समय कुल्लू से मिले सालरी अभिलेख में ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया गया है। यही लिपि कांगड़ा से प्राप्त बौद्ध मूर्तियों की वेदिका पर लिखी मिलती है, जिन्हें छठी सदी ई० में रक्खा जाता है। फिर उसी क्षेत्र में स्थित बैजनाथ से मिले अभिलेख में इसी लिपि का प्रयोग किया गया है। कुल्लू घाटी के पूर्वी भाग में स्थित निर्मण्ड से प्राप्त ताम्र-पत्र पर भी इसी लिपि में सातवीं सदी ई० में लेख लिखवाया गया, जिसे कुछ विद्वान् गुप्त-ब्राह्मी नाम देते हैं, क्योंकि इसमें आगे विकसित ब्राह्मी अक्षरों का प्रयोग मिलता है। वास्तव में इस सदी से आगे लगभग १३वीं सदी तक विकसित मूलतः ब्राह्मी लिपि को विद्वानों ने कई नामों से पुकारा है। कुछ इसे कुटिलाक्षर कहते हैं और कुछ इसे सिद्धमातृका लिपि कहना उचित समझते हैं, जिसका उल्लेख अलबेरूनी ने किया है। वास्तव में उत्तर भारत में इस काल की लिपि में देवनागरी लिपि के अक्षर मिलने लगते हैं। उनमें शीर्ष में लगने वाली बेड़ी लकीर भी मिलने लगती है, अतएव हम उसे देवनागरी का पूर्व रूप मानते हैं और इस लिए इसे देवनागरी लिपि कहना अधिक उचित समझते हैं। अलबेरूनी ने भी नागर या नागरी लिपि का उल्लेख किया है, जो उस समय पश्चिम और उत्तर भारत में प्रचलित थी। वह ऐसी ही लिपि को कभी-कभी अर्द्ध नागरी कहता है।

हिमाचल के विभिन्न भागों में ईसवी की इन शताब्दियों में ऐसी ही लिपि मिलती है। प्रतिहारों के अभिलेखों में इसी लिपि का प्रयोग मिलता है। यह भाग आठवीं शताब्दी ई० से इन्हीं के अधिकार और प्रभाव क्षेत्र के भीतर था, अतएव इस लिपि के विकास का अवसर इस भाग में भी मिला। हाटकोटी, किन्नौर तथा चम्बा से प्राप्त इस काल के अभिलेखों में इसी लिपि का प्रयोग किया गया है। जिसमें आगे और भी विकास के कारण इनमें क्षेत्रीय विभिन्नताएं बढ़ती गई और प्राचीन खरोष्ठी लिपि, हस्तलेख, कलम और लेख्यआधार के परिवर्तन के कारण प्राचीन ब्राह्मी या देवनागरी का रूप पश्चिमोत्तर भारत के कुछ भागों में मूलत: बदल गया इससे उस लिपि का जन्म हुआ जिसे हम शारदा लिपि कहते हैं। इसका मूल स्थान, वैसे कश्मीर था, लेकिन इस प्रदेश के कुछ भाग के इसके साथ जुड़े रहने के कारण और चम्बा तथा कांगड़ा के क्षेत्रों में वहां से लोगों एवं विद्वानों के आने के कारण इस क्षेत्र में भी उस लिपि का प्रवेश हुआ। मध्यकाल में यहां इसमें भी कुछ लेख लिखवाए गए। बैजनाथ प्रशस्ति इस लिपि का सर्व-प्राचीन उदाहरण है लेकिन इस क्षेत्र में वह लोकप्रिय न हो सकी और देवनागरी अपने ढंग से विकसित होती रही वैसे कुछ भागों में इस क्षेत्र में आधुनिक काल में एक नई लिपि का जन्म हुआ, जिसे हम टांकरी लिपि कहते हैं जिसमें सत्रहवीं सदी से कुछ भागों में अभिलेख लिखवाए गए। इसमें एक प्रकार के साहित्य का सृजन हुआ और कुछ हस्तलिपियों में चित्रित ग्रंथों की रचना हुई। इसे वैसे व्यापारी वर्ग ने अधिक प्रश्रय दिया। इस समाज में वह कहीं-कहीं आज भी लोकप्रिय हैं।

भाषा और साहित्य :

इसी प्रकार इस क्षेत्र में भाषा का विकास हुआ, जिसका इतिहास सिक्कों पर लिखे अभिलेखों और अन्य अभिलेखों की सहायता से लिखा जा सकता है। वैदिक संस्कृति इस क्षेत्र में प्राचीन काल से विकसित हो रही थी। अतएव वैदिक संस्कृत भाषा का भी इस क्षेत्र में विकास हुआ जिसके सही इतिहास का ज्ञान हमें इस समय नहीं है। प्राचीन भारत के साहित्यकार प्राय: अपना नाम अपनी कृतियों में नहीं देते थे और न उसके निर्माण की तिथि और अपने निवास-स्थान के विषय में ही कुछ सूचनाएं देते थे। अतएव वैदिक साहित्य या लौकिक संस्कृत साहित्य के कौन से ग्रन्थ यहां लिखे गए, इसके सम्बन्ध में अधिकतर अनुमान ही लगाना होगा।

प्राचीन भारत का सबसे प्राचीन ग्रंथ जो हिमाचल के भूगोल और यहां की संस्कृति से अधिक परिचित है, पाणिनि द्वारा लिखित अष्टाध्यायी है अत: इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यहां की प्राचीन भाषा संस्कृत थी जो पांचवीं-चौथी सदी ई० पू० में इस क्षेत्र में प्रचलित थी। वास्तव में वैदिक ग्रन्थ पंजाब की इन्हीं पांच नदियों के किनारे और गंगा-यमुना के द्वाबे में लिखे गए। अतएव इन्हें भी इस क्षेत्र की देन मानना समीचीन होगा। महाभारत भी इस क्षेत्र से बड़ा परिचित मालूम होता है और इस क्षेत्र से उसके पात्रों का अत्यधिक सम्बन्ध यहां की संस्कृत भाषा एवं उसके साहित्य की ओर संकेत करता है। सम्भवत: पाणिनि इस क्षेत्र के त्रिगर्त-क्षेत्र में ही हुए थे और इसी क्षेत्र में रहकर उन्होंने अपने व्याकरण की रचना की थी। इसी तरह मनु का भी सम्बन्ध यहां स्थित मनाली घाटी से जोड़ा जाता है जिसका प्रमाण केवल दन्तकथाओं में ही मिलता है। इन पर विश्वास करके यह कहा जा सकता है कि व्यास और वशिष्ट ऋषि इसी क्षेत्र में हुए थे या इस क्षेत्र

में रह कर उन्होंने अपनी साहित्यिक तपस्या की थी। वैसे ऐसा कहने के लिए इतिहास में कोई प्रमाण नहीं मिलता है।

इस क्षेत्र में प्रचलित दूसरी भाषा प्राकृत के ज्ञान के स्रोत सिक्के और अभिलेख हैं, जिनकी सहायता से चौथी सदी ई०पू० से लेकर तीसरी सदी ईसवी तक प्रचलित प्राकृत भाषा के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएं मिलती हैं। यह संभवत: लोक प्रिय भाषा थी, जिसे उस समय जन साधारण बोलता और लिखता-पढ़ता था। हमने पहले ही लिखा है कि कांगड़ा क्षेत्र से मिले तीसरी स०ई०पू० के अभिलेख में इस भाषा का प्रयोग किया गया है और ऐसी ही सूचना हिमाचल के पूर्वी सीमा पर स्थित काल्सी नामक स्थान पर लिखाये अशोक के अभिलेख से भी मिलती है। इस क्षेत्र में उस समय प्रचलित सिक्कों पर भी इसी भाषा का प्रयोग किया गया है और यह स्थिति तीसरी सदी ई० तक इस क्षेत्र में चलाये गए सिक्कों और लिखाये गये अभिलेखों से ज्ञात होती है। परन्तु एलन आदि विद्वानो ने इन सिक्कों और अभिलेखों में ब्राह्मी और खरोष्ठी दो लिपियों के प्रयोग के कारण उनमें प्रयुक्त प्राकृत भाषा में कुछ अन्तर देखा है जो ठीक से देखने पर सही मालूम होता है। अत: इस क्षेत्र में प्रचलित प्राकृत भाषा में दो बोलियां थी एक में संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट प्रकट होता है। संभवत: पश्चिमी भाग में संस्कृत से कम प्रभावित प्राकृत बोली जाती थी और पूर्वी भाग में या पंजाब से लगे हिमाचल प्रदेश के क्षेत्रों में संस्कृत से प्रभावित प्राकृत अधिक प्रचलित थी। कुछ भी हो, धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्तन हुआ और चौथी सदी ईसवी या उससे कुछ पहले ही प्राकृत भाषा का क्षेत्र संस्कृत भाषा ने लेना प्रारम्भ कर दिया, जैसा कि योधेयों के सिक्कों पर मिले प्रमाणों से मालूम होता है। इनके सिक्कों पर प्राकृत भाषा का बहुत कम प्रयोग हुआ है और उन पर सुन्दर परिष्कृत संस्कृत में लिखे अभिलेख मिलते हैं। उनकी मुहरों पर तो अच्छे और बड़े-बड़े अभिलेख मिलते हैं, जिनमें साहित्यिक संस्कृत के गद्य का सुन्दर उदाहरण मिलता है। यहां यह ध्यातव्य है कि योधेयों ने हिमाचल के मैदानों से लगे भागों पर अधिकार कर लिया था और उनका पतन चौथी शताब्दी ई० में समुद्रगुप्त के उत्थान के कारण हो गया था।

इस तरह यह कहना उचित लगता है कि गुप्त-युग के प्रारम्भ में ही सम्भवत: प्राकृत केवल बोलने-चालने की ही भाषा रह गई थी और अभिलेखों तथा अन्य साहित्यिक ग्रन्थों में संस्कृत का प्रयोग होने लगा था। इस विकास के अनेक कारण थे। एक तो इस समय तक हीनयान बौद्ध धर्म का पतन हो गया था, जिस के आचार्यों ने पालि-प्राकृत भाषा को बड़ा प्रोत्साहित किया था और दूसरे, इसके बहुत पहले प्रथम सदी ई० में ही कनिष्क प्रथम के समय में ही महायान बौद्ध धर्म का जन्म हुआ था, जिसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाने लगा था। ध्यातव्य है इस क्षेत्र से लगे भाग के प्रमुख नगर जलन्धर में ही सम्भवत: यह बौद्ध बैठक हुई थी, जिसमें ये निर्णय लिए गये थे। इसके साथ-साथ हिन्दू धर्म का प्रचार पुन: बड़े जोरों पर प्रारम्भ हो गया था, जिस में संस्कृत भाषा मूलत: अधिक ऊंचा स्थान ग्रहण किए हुए थी। यहां यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि खरोष्ठी लिपि का भी पतन इस काल तक हो गया था, जिस में प्राकृत भाषा लिखी जाती थी, क्योंकि शकों और कुषाणों के पतन के साथ यह अवश्यम्भावी था क्योंकि इन विदेशी शक्तियों की तरह वह भी एक विदेशी लिपि थी। अतएव जिस राष्ट्रीयता के दौर में कुषाण शक्ति धराशायी हो गई थी,

उसके समक्ष उनकी लिपि और उससे कुछ हद तक इस क्षेत्र में उससे चिपकी भाषा की अवनति होनी ही थी और उसके स्थान पर संस्कृत भाषा, जो इस काल तक राष्ट्रीय भाषा बन चुकी थी, आगे विकसित होनी ही थी।

गुप्त और गुप्तोत्तर काल में, इस लिए, इस भाषा का भारत के अन्य भागों की तरह इस क्षेत्र में विकास हुआ। गुप्त काल में कांगड़ा, कुल्लू तथा सिराज क्षेत्रों से इस काल में उत्कीर्ण अभिलेख मिलते हैं। निर्मण्ड ताम्र-पत्र अभिलेख में इस भाषा में लिखे उत्तम गद्य का उदाहरण मिलता है। वह बौद्धों और हिन्दुओं तथा अन्य धर्मावलम्बियों की भाषा थी। मूर्तियों की वेदिका पर इसमें लेख लिखाये गये। यही हाल गुप्तोत्तर काल में हिमाचल के विभिन्न भागों में हुआ जान पड़ता है, क्योंकि गुप्त सम्राटों की तरह हर्ष वर्द्धन और प्रतिहार सम्राटों ने इसी भाषा को प्रश्रय दिया और उसमें अपने अभिलेख लिखवाये। हाटकोटी, चम्बा तथा कांगड़ा में जो अभिलेख इस समय लिखाये गए, वे सभी भाषा में लिखाए गए। यह स्थिति इस क्षेत्र में तेरहवीं–चौदहवीं सदी तक बनी रही, जब अन्य क्षेत्रों की तरह यहां भी इस भाषा का पतन प्रारम्भ हो गया। यद्यपि यहां बाद में मध्यकाल तक अभिलेखों की भाषा प्रायः संस्कृत ही बनी रही, लेकिन उसमें भाषागत और व्याकरण की अवनति देखी जा सकती है। वास्तव में, इस क्षेत्र में भी बहुत पहले से प्राकृत भाषा बिखरनी शुरू हो गई थी और संस्कृत के पतन के साथ यहां भी क्षेत्रीय साधारण बोलचाल की भाषा हिन्दी का जन्म हो गया था, जिस का उदाहरण चौदहवीं सदी ई० में लिखाये कुल्लू के एक मन्दिर अभिलेख में मिलता है। यहां की मध्यकालीन वंशावलियों में भी भाषागत यही स्थिति मिलती है, जो इस क्षेत्र के साहित्यिक कर्मों के सुन्दर उदाहरण हैं।

प्राचीन काल में इस क्षेत्र के साहित्यिक विकास के इतिहास पर प्रकाश डालने वाली सामग्री का प्रायः अभाव है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के विकास में यहां के प्राचीन निवासियों के योगदान की सही सूचना हमारे पास नहीं है। हमने पहले ही लिखा है कि दन्तकथाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पाणिनि इसी क्षेत्र में हुए थे और वेद व्यास तथा मनु का जन्म इसी क्षेत्र में हुआ था। बाद के भारतीय इतिहास में हिमाचल के योगदान का ज्ञान हमें नहीं के बराबर है। लेकिन जलन्धर, कुल्लू और सिरमौर क्षेत्रों में प्राचीन कालीन बौद्ध केन्द्रों में अनेक विद्वान एवं दार्शनिक रहते थे, ऐसा ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से मालूम होता है। कांगड़ा की एक मूर्ति की वेदिका पर प्राप्त अभिलेख से दो बौद्ध विद्वानों के नाम हमें ज्ञात हैं। नागार्जुन आदि बौद्ध विद्वान सम्भवतः इसी क्षेत्र से लगे मैदानी भागों में पैदा हुए थे। तिब्बत से आने वाले कुछ बौद्ध विद्वान यहां आकर निवास किये थे, उनका भी साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के योगदान का अनुमान किया जा सकता है। लेकिन उनकी किसी रचना विशेष को गिनना कठिन है जिसकी रचना उन्होंने इस क्षेत्र में आकर की हो। ऐसा ही इस क्षेत्र के विभिन्न मन्दिरों और प्राचीन राजवंशों की शरण में रहने वाले बौद्धेतर विद्वानों का अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी कृतियों का ज्ञान हमें नहीं है।

बैजनाथ प्रशस्ति में बाहर से आकर कांगड़ा में बसे कुछ विद्वानों का उल्लेख किया गया है। प्रशस्ति में राम नामक कवि का उल्लेख मिलता है जिसका पिता मृंगक किसी कश्मीर नरेश

का मन्त्री था। राम एक अत्यन्त कुशल एवं मेधावी कवि था। अभिलेख में उसे कवीश्वर कहा गया है। वह द्वयर्थक कविता लिखने में बड़ा प्रवीण था और भाषा पर उसका पूर्ण तथा अद्भुत अधिकार था।

राघव चैतन्य यहां का दूसरा कवि था। वह वेदान्त दर्शन में पारंगत एक ऋषि था जिसकी कुछ कृतियों का उल्लेख शार्गधर पद्धनि में मिलता है। यहां के अन्य विद्वानों में कृष्णभट्ट का नाम उल्लेखनीय है, जिसकी चर्चा बैंजनाथ प्रशस्ति में मिलती है। वह एक प्रसिद्ध कवि था, जिसे सभी शास्त्रों का ज्ञान था। वह हरिहर का भक्त था और मूलतः काशी का निवासी था। उसका पितामह जिसका नाम कृष्णभट्ट था, षड्दर्शन की व्याख्या बड़ी कुशलता से करता था। उसने अनेक यज्ञ किए थे। उसका पिता वागीश्वर भी मीमांसा स्मृतियों तथा यज्ञ विद्याओं में बड़ा पारंगत था। वह एक कवि था और उसने भी कई काव्यों की रचना की थी। ज्वालामुखी प्रशस्ति का अन्तिम भाग इसी कृष्णभट्ट ने लिखा था। यहां के अन्य विद्वानों में कर्मध्वज के शिष्य सूर्यध्वज का उल्लेख करना आवश्यक है। वह भी संस्कृत का पण्डित था और कीरग्राम के गिने चुने विद्वानों में से एक था।

प्राचीनकाल में कांगड़ा क्षेत्र में ऐसे अनेक विद्वान निवास करते थे। यह क्षेत्र ज्योतिषियों का एक प्रधान क्षेत्र था, जिनमें से अनेक कश्मीर से आकर यहां निवास करने लगे थे। इसी प्रकार कुछ जैन विद्वान भी यहां रहते थे, जैसा कि बैंजनाथ से प्राप्त जैन अभिलेखों से मालूम होता है।

इसके काव्य का एक नमूना बैंजनाथ प्रशस्ति में देखा जा सकता है। इसके चौदह श्लोक इस प्रकार रचित है कि वे शिव और उमा दोनों पर समान रूप से लागू होते हैं। इसमें प्रयुक्त, छन्दों और अलंकारों के प्रयोग से उसकी काव्य प्रतिभा का ज्ञान मिलता है। उसे व्याकरण तथा कोश का अद्भुत ज्ञान था। इसी कारण अपनी तरूण अवस्था में ही वह विश्वविश्रुत था।

इस क्षेत्र की प्राचीन साहित्य उपलब्धियों के केवल यहां के अभिलेखों और वंशावलियों को ही गिनाया जा सकता है। तीसरी सदी ई०पू० से ही अभिलेखों के लिखने और लिखाने की परम्परा का जन्म इस क्षेत्र में हो चुका था और वह परम्परा बाद में मध्यकाल तक विकसित होती रही। इन अभिलेखों में गद्य और पद्य दोनों प्रकार की साहित्यिक शैलियों के उदाहरण मिलते हैं। गद्य काव्य का सुन्दर निदर्शन निर्मण्ड अभिलेख में मिलता है जिसे सातवीं शताब्दी ई० की रचना मानते हैं। बैंजनाथ प्रशस्ति और चम्बा के अभिलेखों से पद्यकाव्य के उदाहरण मिलते हैं। इन अभिलेखों में सुन्दर परिस्कृत शैली का प्रयोग किया गया है। लम्बे-लम्बे समास, सुन्दर शब्दचयन, विभिन्न प्रकार के अलंकारों का प्रयोग और विविध प्रकार के छन्दों में उनकी रचना आदि ऐसी विशेषताएं हैं जिनसे तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियों एवं रचनात्मक उपलब्धियों का सही अनुमान लगाया जा सकता है। यहां के अभिलेख ललित भाषा में लिखे सुन्दर लघु काव्य हैं, जिनकी तुलना संस्कृत के किसी भी खण्डकाव्य से की जा सकती है।

पद्य और गद्य काव्यों के अतिरिक्त साहित्यिक रचनाओं में इतिहास-लेखन में सम्भवतः इधर के लोगों की अधिक रुचि थी। इस क्षेत्र में वंशावलियों के लिखने की एक विशेष परम्परा

विकसित हुई थी। अलबेरूनी का कथन है कि नगरकोट के किले में शाही वंश का इतिहास एक रेशमी कपड़े पर लिखा गया था, जिस से त्रिलोचन पाल के पूर्वजों के कार्यों पर प्रकाश पड़ता था। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इस क्षेत्र में मध्यकालीन युरोप की भान्ति इतिहास-लेखन की अपनी शैली का विकास हुआ था। इसके लिए कश्मीरी प्रभाव मूल कारण रहा होगा, जहां इतिहास-लेखन की सही परम्परा जन्मी थी। कल्हण की राजतरंगिणी यहां के शिक्षित पण्डितों को अवश्य मालूम रही होगी, क्योंकि उस क्षेत्र के अनेक पण्डित इस क्षेत्र में आते जाते थे। हर्षोत्तर काल में भारत में चरित्र-ग्रन्थ लिखने की परम्परा चल पड़ी थी, इस शैली से भी यहां के लोग अपरिचित नहीं रहे होंगे। अतएव इस क्षेत्र में वंशावलियां लिखी गईं। जिन की हस्तलिखित लिपियां एक से दूसरी पीढ़ी को मिलती रहीं। कांगड़ा, चम्बा, कुल्लू तथा हिमाचल के अन्य भागों में इस में विकास हुआ और मध्यकाल में इसी लिए क्षेत्रीय हिन्दी भाषा में भी इनकी रचना हुई।

रीडर, इतिहास विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला।

●

गुलेरी जन्म स्मृति समारोह सम्पन्न

—डा० विद्याधर शर्मा गुलेरी

धर्मशाला,–7 जुलाई, हिन्दी संस्कृत के प्रसिद्ध साहित्यकार स्व० पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के जन्म दिवस पर हिमाचल प्रदेश राज्य भाषा अकादमी द्वारा जिला परिषद हाल धर्मशाला में राज्य स्तरीय साहित्यिक समोरोह तथा कवि सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसमें प्रदेश के बाइस से अधिक कवियों ने भाग लिया। समारोह का विषय प्रवर्तन सचिव अकादमी मौलूराम ठाकुर, मंच संचालन खेमराज गुप्त सागर तथा अध्यक्षता डा० वेदप्रकाश अग्नि ने की। गुलेरी जी के कथा-साहित्य पर डा० गौतम शर्मा व्यथित तथा स्व० गुलेरी जी के निबन्धों तथा कविताओं पर डा० विद्याधर शर्मा गुलेरी ने शोध पत्र पढ़े। कवि सम्मेलन के प्रमुख कवि मनोहर सागर पालमपुरी, डा० ओमप्रकाश सारस्वत, डा० गौत्तम शर्मा व्यथित, डा० पीयूष गुलेरी, डा० विद्याधर शर्मा गुलेरी, श्री खेमराज गुप्त, श्रीमति कीर्ति निधि, सतीशधर तथा देशराज डोगरा थे।

समारोह के समापन पर स्व० पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी के कृतित्व से सम्बन्धित स्मारिका की यथाशीघ्र प्रकाशन योजना विषयक पर सर्वसम्मति से निर्णय पारित किया गया।

समारोह में यह अपेक्षा की गई कि गुलेरी जी के जन्म और कार्य के बारे में और अधिक सामग्री पाठकों को उपलब्ध कराई जाए। इसी उद्देश्य से गुलेरी जी द्वारा अपने शब्दों में लिखित परिचय एतत्द्वारा प्रस्तुत किया जाता है :

गुलेरी जी अपने शब्दों में (भाषानुवाद) :

मैं पंजाब प्रान्त के कांगड़ा जिले में गुलेर नामक ग्राम निवासी सारस्वत ब्राह्मणों के सम्माननीय कुल का वंशज हूं। ज्योतिष के विद्वान और पंचांग विद्या के कर्त्ता के रूप में मेरे प्रपितामह की प्रसिद्धि उन दिनों में पटियाला और बनारस तक फैली हुई थी। हमारे वंश के लोग माफी और जागीर की भूमि का उपभोग करते हैं और हम इतिहास प्रसिद्ध गुलेर के कटोच क्षत्रियों के मुख्य पुरोहित और गुरु हैं। गुलेर के राजा ने मेरे पिता जी को गुरु के रूप में पालकी, गद्दी और ताज़ीम का सम्मान प्रदान किया था और उनके बाद मुझे भी वही प्रतिष्ठा प्राप्त है।

मेरे पिता पण्डित शिवराम जी, अपने समय में बनारस के विशिष्ट संस्कृत विद्वान माने जाते थे और जयपुर के स्वर्गीय महाराजा रामसिंह जी बहादुर ने अपने दरबार के राज पण्डित पद के लिए उनका चयन किया था। वे जयपुर दरबार के वरिष्ठ पण्डित थे और लगभग ४८ वर्ष तक जयपुर के संस्कृत कालेज में उपाध्यक्ष एवं संस्कृत, व्याकरण, भाषा विज्ञान और वेदान्त, दर्शन के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित रहे। स्वर्गीय एवं वर्तमान महाराजा तथा समाज के सभी वर्गों के लोगों

से प्रखर पण्डित्य तथा निर्मल चरित्र के कारण उनको महान समादर प्राप्त था। वे जयपुर में संस्कृत अध्ययन के आद्य प्रवर्तकों में थे और उनकी शिष्य मण्डली में देश के बहुत से प्रसिद्ध पण्डित हैं तथा तीन को तो भारत सरकार द्वारा महामहोपाध्याय का सम्मान भी प्राप्त हो चुका है।

मेरा जन्म जयपुर में ही हुआ और मैंने महाराजा कालेज में शिक्षा पाई। स्कूल और कालेज की सभी कक्षाओं में सर्वोच्च स्थान एवं पारितोषिक पाता रहा।

मैंने माध्यमिक परीक्षा १८९७ ई० में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् १८९९ ई० में मैंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एंट्रेंस परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और विश्वविद्यालय की इस परीक्षा के वरिष्ठता क्रम में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। जयपुर राज्य में शिक्षा के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व अवसर था। अतः महाराजा साहिब बहादुर की ओर से सार्वजनिक शिक्षा विभाग द्वारा मुझे स्वर्ण-पदक प्रदान किया गया। साथ ही, मैंने उसी वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। १९०१ ई० में मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रथम वर्ष कला परीक्षा में द्वितीय श्रेणी प्राप्त करके उत्तीर्ण हुआ। इस परीक्षा में अंग्रेजी के अतिरिक्त मेरे विषय तर्क, ग्रीक और रोमन इतिहास, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, संस्कृत और सामान्य एवं उच्चतर गणित रहे थे। इसके साथ ही मैंने हिन्दी में मौलिक रचना प्रस्तुत करके वैकल्पिक परीक्षा में सफलता प्राप्त की। मेरे एक आचार्य द्वारा मेरे नाम लिखे गए पत्र के उद्धरण से ज्ञात होगा कि मैंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के सभी परीक्षार्थियों में अंग्रेजी गद्य लेखन में द्वितीय स्थान प्राप्त किया था।

विद्यार्थी अवस्था में ही स्वर्गीय कर्नल स्विन्टन जैकब और कैप्टन ए०एफ० गैरट, आर.ई.एस. ने मुझे जयपुरस्थ ज्योतिष यन्त्रालय के यन्त्रोद्धार के निमित्त सहायक के रूप में चुन लिया था। इस कठिन एवं मौलिक कार्य में मैंने जो सहायता की उसमें मेरी सफलता को प्रमाणित करते हुए राज्य की ओर से मुझे दो सौ रुपये का पारितोषिक प्रदान किया गया। इसके लिए ऊपरिलिखित दोनों महानुभावों ने जो संलग्न प्रमाणपत्र प्रदान किए हैं वे साक्षीभूत हैं।

अंग्रेजी, मानसिक एवं नैतिक विज्ञान और संस्कृत विषय लेकर मैंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से १९०३ ई० में बी०ए० परीक्षा पास की और विश्वविद्यालय के सफल परीक्षार्थियों में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। जयपुर के महाराजा कालेज अथवा राजपुताना के किसी भी कालेज से कोई भी परीक्षार्थी अब तक ऐसी सफलता प्राप्त नहीं कर सका था। अतः इन शिक्षालयों के इतिहास में यह एक अभूतपूर्ण घटना थी। राज्य की ओर से मुझे पुनः स्वर्णपदक और ३०० रुपये के मूल्य की पुस्तकें प्रदान करके पुरस्कृत किया गया। उस वर्ष का सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी होने के नाते मैंने नार्थब्रुक स्वर्ण-पदक भी प्राप्त किया।

मनोविज्ञान एवं कर्त्तव्य शास्त्र विषय लेकर मैंने एम०ए० उपाधि के लिए परीक्षा के निमित्त आवश्यकता से भी अधिक अध्ययन किया परन्तु स्वास्थ्य की गड़बड़ी ने मुझे परीक्षा में बैठने का अवसर नहीं दिया।

संस्कृत के विश्रुत विद्वान अपने पिता जी से कई वर्षों तक स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करने का असाधारण सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। मैं संस्कृत बहुत अच्छी तरह जानता हूं और उच्चतर एवं मौलिक शोध को लक्ष्य में रख कर मैंने वैदिक, पौराणिक, साहित्यिक एवं वेदान्त विषयक संस्कृत साहित्य के अंगों का विशिष्ट अध्ययन किया है। मैंने संस्कृत का आरम्भिक अध्ययन प्राचीन पद्धति से किया जो बहुत ठोस होता है। अंग्रेजी शिक्षा ने मुझे वह कसौटी प्रदान कर दी है जिस का कि पाश्चात्य विद्वान प्राचीन भाषा में संशोधन के उद्देश्य के लिए प्रयोग करते हैं।

मैंने इन्डियन एन्टीक्वेरी एवं अन्य संस्कृत और हिन्दी सावधिक पत्र-पत्रिकाओं को बहुत से विद्वत्तापूर्ण लेखों द्वारा योगदान दिया है। इन्डियन एन्टीक्वरी में प्रकाशित मेरे लेखों की विशिष्ट प्राच्य विद्याविदों ने प्रशंसा की है। जब महामहिम ब्रिटिश सम्राट भारत आए तो मैंने उनके लिए संस्कृत में स्वागतमान की रचना की। सुप्रसिद्ध डच विद्वान डा० कैलेण्ड (उट्रेच निवासी) ने एतन्निमित्त मेरी बहुत प्रशंसा की। मैंने कतिपय आद्यावधि अप्रकाशित संस्कृत ग्रन्थों की समीक्षा एवं व्याख्यात्मक प्रस्तावना और टिप्पणियों सहित सम्पादन कार्य भी हाथ में लिया है। जयपुर राज्य द्वारा संचालित संस्कृतोपाधि की परीक्षाओं में मैं साहित्य, धर्म शास्त्र और व्याकरण विषयों का परीक्षक होता हूं तथा राजपुताना मिडल स्कूल और जयपुर मिडल स्कूल परीक्षाओं में भी मुझे परीक्षक नियुक्त किया जाता है।

सन् १९०४ ई० में कर्नल टी०सी० पीयर्स आई०ए० तत्कालीन रेजीडेन्ट जयपुर की सहमति से मुझे खेतड़ी के अल्पवयस्क राजा का अभिभापक अध्यावक नियुक्त किया गया। पीयर्स साहब का कश्मीर से लिखा हुआ प्रशंसापत्र इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है। कि मेरी कार्य प्रणाली के विषय में उनके मन में कैसी धारणा थी।

जब जयपुर दरबार ने मेयो कालेज अजमेर के मोतमिद् (रियासत के सामन्तों और प्रशिक्षणार्थियों के अभिभावक) पद का स्तर ऊंचा करने का निर्णय किया तो १९०७ ई० में इस पद के लिए मुझे चुना गया। यह चुनाव करते समय रियासत की स्टेट कौंसिल के सचिव ने रेजिडेन्ट जयपुर के नाम यह पत्र लिखा था :

संख्या २२५४
जयपुर, दिनांक २१ अक्तूबर, १९१६.

"मेयो कालेज के मोतमिद् पद पर किसी योग्य व्यक्ति की नियुक्ति कर उसका स्तर बढ़ाने का प्रश्न कुछ समय से जयपुर दरबार के विचाराधीन है। अब कौंसिल ने राजा जी खेतड़ी के शिक्षक पं० चन्द्रधर गुलेरी बी०ए० को लाला मिठ्ठनलाल के स्थान पर मेयो कालेज के मोतमिद् पद ग्रहण करने के लिए चुना है। पं० चन्द्रधर गुलेरी एक बहुत ही योग्य व्यक्ति हैं और उन्होंने अपने कर्त्तव्यों का सम्यक् पालन करते हुए प्रिंसिपल मेयो कालेज को सदैव सन्तुष्ट किया है और अब तक इस संस्था का बहुत कुछ अनुभव प्राप्त कर लिया है। अतः कौंसिल का विश्वास है कि इनकी नियुक्ति के विषय में प्रिंसिपल मेयो कालेज, अजमेर की सहमति प्राप्त हो जायेगी।"

मेयो कालेज में लगभग १५ वर्ष बहुत लम्बे समय तक मैं विविध श्रेणियों को अवैतनिक रूप से विभिन्न विषय पढ़ाता रहा हूं। तदनन्तर सन् १९१६ में मुझे महामहोपाध्याय पं० शिव नारायण के स्थान पर हैड पण्डित मेयो कालेज के पद पर नियुक्ति के लिए चुना गया और हिन्दी तथा संस्कृत का अध्यापन कार्य मुझे सौंपा गया।

कक्षा में, छात्रावास में और क्रीड़ाक्षेत्र में अपने विद्यार्थियो के मानसिक, नैतिक, बौद्धिक और शारीरिक विकास की दिशा में मैंने जिस परिमाण में और जिस स्तर पर कार्य किया है उसके विषय में प्रिंसिपल महोदय ही अपना मत दे सकते हैं कि वह उनके मनोनुकूल है या नहीं।

मैंने प्राचीन एवं आधुनिक गद्य तथा पद्यात्मक हिन्दी साहित्य का विशिष्ट अध्ययन किया है और पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं से इसके विकास के सम्बन्ध में भी अनुशीलन किया है। इतिहास और पुरातत्व विषयों में मेरी अभिरूचि है और अपने नाम से, बिना नाम के अथवा अन्य विद्वानों के साथ जो लेखादि प्रकाशित किए हैं, वे सर्वनिवेदित हैं।

मैं हिन्दी का प्रसिद्ध लेखक हूं और साहित्यिक जगत में आलोचक और विद्वान के रूप में मेरी ख्याति है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की प्रबन्धकारिणी परिषद का मैं कई वर्षों तक सदस्य रहा हूं।

जयपुर के रेजीडेन्ट कर्नल शावर्स द्वारा लिखित 'नोट्स आन जयपुर' में मेरा यथेष्ट योगदान है। युद्ध काल में मैंने सम्राट की सेनाओं की विजय के सम्बन्ध में एक संस्कृत प्रार्थना लिखी थी जो प्रतिदिन विद्यालयों में दोहराई जाती थी। युद्ध काल में प्रिंसिपल मेयो कालेज, पब्लिसिटी बोर्ड

अजमेर मेरवाड़ा के अध्यक्ष भी थे। मैंने अजमेर मेरवाड़ा 'वार गजट' में हिन्दी संस्करण के सम्पादन में अकेले ही उनकी सहायता की थी और साथ ही अंग्रेजी संस्करण में भी लेख लिखता था। अजमेर मेरवाड़ा वार गजट के हिन्दी संस्करण की शैली और साहित्यिक स्तर का अपेक्षाकृत अधिक समादर था।

(हस्ताक्षर)

८ जुलाई १९१७ **पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी**

सन्दर्भ :- 'गुलेरी जी अपने शब्दों में' का प्रस्तुत आलेख गुलेरी जी की सेवा पंजिका (*Service-Book*) जो कि आज भी मेयो कालेज अजमेर में सुरक्षित है, का यथावत् प्रतिरूप है।

हिमाचल संस्कृत संस्थान
चन्द्रभवन गुलेर
कांगड़ा–१७६०२८

पांच पोथी पण्डित

—सन्तराम वत्स्य

विजय नगर में राजा कृष्णदेव राज्य करते थे। वह विद्वानों का बड़ा सम्मान करते। दूर-से विद्वान उनके दरबार में आते, अपने-अपने विषय की विद्वत्ता दिखाते और सम्मान पाते।

एक दिन उनके दरबार में पांच पण्डित आए। उनमें एक व्याकरण का पण्डित था, दूसरा ज्योतिष का, तीसरा तर्कशास्त्र का, चौथा आयुर्वेद का और पांचवां संगीत का।

हर एक ने दरबार में अपनी-अपनी योग्यता का ऐसा बखान किया कि राजा बहुत प्रभावित हुआ, प्रशंसा करने लगा। लेकिन राजा के मन्त्री ने उनकी प्रशंसा में एक शब्द भी नहीं कहा। इस मन्त्री का नाम था अप्पा जी।

राजा ने धीरे से मन्त्री से पूछा, "अप्पा जी, आप चुप क्यों हैं? क्या इन विद्वानों की योग्यता पर आपको सन्देह है? मुझे तो ये पांचों ही अपने-अपने विषय के माने हुए विद्वान लगते हैं। आपका क्या विचार है?"

मन्त्री अप्पा जी ने धीरे से उत्तर दिया, 'महाराज! किसी एक विषय को रट लेने भर से कोई गुणी नहीं बन जाता। पढ़ना एक बात है और पढ़े हुए को व्यवहार में लाना दूसरी बात है। इनकी व्यवहारिक बुद्धि के बारे में मुझे सन्देह है। क्यों न इनकी परीक्षा लेकर देख ली जाए।"

राजा ने मन्त्री से पूछा, 'क्या परीक्षा लें?'

मन्त्री ने कहा, "इन सबसे कहिए कि पहले सब मिलकर भोजन बना-खा लें। फिर दरबार में आएं और अपना-अपना पुरस्कार लें।"

राजा ने मन्त्री की सलाह मान कर वैसा ही कह दिया।

इन सबको भूख लगी हुई थी। इसलिए सब दरबार से जाकर भोजन की तैयारी करने लगे। अप्पा जी ने उनके पीछे एक जासूस लगा दिया।

पांचों पण्डितों ने रसोई का काम आपस में बांट लिया। वैद्य जी बाजार से सब्जी लेने गए। व्याकरणाचार्य दही और तर्कशास्त्री घी। ज्योतिषी जी पत्तलें बनाने के लिए पत्ते लेने निकल पड़े तो संगीताचार्य जी ने आग जलाकर खिचड़ी पकानी शुरू की।

सब्जी खरीदने गए पण्डित जी ने कचालू देखे। सोचा, कचालू की सब्जी कफ पैदा करती है। हजम भी देर से होती हैं। यह स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं। फिर उनकी नजर गोभी के फूल पर पड़ी। गोभी का स्वाद उन्हें पसन्द था। पर जब गुण-दोष बिचारने लगे तो उसमें भी दोष ही दोष दिखाई दिये। गोभी का सबसे बड़ा दोष तो यह लगा कि यह वायु-विकार पैदा करती है। पेट में हवा बनने लगती है। यह भी ठीक नहीं।

फिर उन्होने करेले देखे। पर करेला तो पित को बढ़ाता है। अब खरीदें तो क्या खरीदें। सभी सब्जियों में कोई न कोई दोष उन्हें दिखाई देता। अन्त में वह बिना सब्जी खरीदे लौट आए।

व्याकरण शास्त्री ग्वालिन से दही का मोल-भाव करने लगे। ग्वालिन बेचारी अनपढ़ थी और गांव की बोली में बात करती थी। शास्त्री जी उसमें भाषा की भूलें निकालते और उसे शुद्ध भाषा बोलने को कहते। आखिर ग्वालिन ने तंग आकर कहा, "बाबा, दही लेना होय तो लो नहीं तो हमरी जान छोड़ो। हमरे सगरे गांव के लोग यो ही बोली बोले हैं। तुम्हारी समझ में नहीं आवे तो हम का करे।" उसने मटका उठाया और आगे चल दी।

पण्डित जी—'अरी रुक तो, रुक तो' ही कहते रहे पर वह नहीं रुकी।

व्याकरण पण्डित मन ही मन बोले, एकदम अनपढ़ है। एक वाक्य भी शुद्ध बोलना नहीं जानती। वह भी बिना दही खरीदे लौट आए।

तर्क शास्त्री जी कुल्हड़ में घी खरीदकर चले आ रहे थे। रास्ते में मन ही मन में तर्क-वितर्क करने लगे। कुल्हड़ में घी है या घी में कुल्हड़। सोचा कि प्रयोग करके पता लगाना चाहिए। उन्होंने कुल्हड़ को उलट दिया तो घी गिर पड़ा। प्रयोग से सिद्ध हो गया कि कुल्हड़ में घी था पर घी से हाथ धो बैठे। कुल्हड़ खाली हो गया और उनके मन में मचा हुल्लड़ शांत हो गया।

वह भी खाली कुल्हड़ लिए वापस आ गए। उधर चौथे पण्डित जी पत्ते तोड़ने के लिए बरगद के वृक्ष पर जा चढ़े। उसी समय कौए की कर्कश बोली उन्हें सुनाई दी। उन्होंने इसे अच्छा शकुन नहीं समझा। वे पत्ते तोड़ने से रुक गए। सोचा थोड़ी देर बाद तोड़ लेंगे। दोबारा पत्ते तोड़ने को हुए तो एक चिड़िया धूल में लोट-पोट होती दिखाई दी। उनके हिसाब से यह भी अपशकुन था। अब तो वे पेड़ से नीचे उतर पड़े और अपशकुन के प्रभाव से बचने के लिए मन ही मन में मन्त्र जाप करने लगे। वे भी बिना पत्ते लिए लौट आए।

पांचवें पण्डित जी जो संगीत के ज्ञाता थे, खिचड़ी पका रहे थे। जब खिचड़ी उबलकर बुद-बुदाने लगी तो वे उसमें लय-ताल खोजने लगे। उनको लगता कि अब यह तीन ताल में बुदबुदा रही है। पर फिर ताल बदल जाता है। इस तरह कभी झपताल तो कभी एक ताल। वे 'ता धिक धिन्ना' बोलते जाते। वे तालों के बोल बोलने में ऐसे मग्न हुए कि खिचड़ी की बात ही भूल गए। खिचड़ी जलती रही और वे मस्त उंगलियों पर मात्राएं गिनते रहे।

खाली हाथ लौटे साथियों ने देखा कि खिचड़ी के जलने की बास आ रही है। और पण्डित जी मस्ती में कुछ गुनगुनाए चले जा रहे हैं।

इस तरह ये पांचों पण्डित मिलकर भोजन नहीं बना पाए और भूखे ही रह गए। 'आज हमारे भाग्य में भोजन करना नहीं लिखा था', कहते हुए एक दूसरे को दोष देने लगे।

पर राजा से पुरस्कार मिलने की बात सोच कर भूखे ही दरबार में जा पहुंचे।

उधर अप्पा जी को जासूस से सब कुछ मालूम हो चुका था। उन्होंने राजा को बता भी दिया था।

पांचों पण्डितों के दरबार में पधारने पर राजा ने पूछा, "कहिए, आप सब भोजन कर आए?"

सबने एक साथ जवाब दिया, "महाराज! आज के दिन हमारे भाग्य में भोजन नहीं लिखा था। यही बजह है कि प्रयत्न करने पर भी हम भोजन पाने में सफल नहीं हुए।"

मैंने आपकी परीक्षा लेने के लिए ही ऐसा कहा था। मुझे यह कहते हुए दुःख होता है कि आप परीक्षा में सफल नहीं हुए, इसलिए आपको पुरस्कार भी नहीं मिलेगा। जिसे आप भाग्य का दोष मानते हैं, वह आपकी बुद्धि का दोष है। व्यवहार ज्ञान से शून्य शास्त्र ज्ञान मनुष्य को असफल बना देता है। व्यवहार में ही ज्ञान की परख होती है।

पांचों पण्डित मुंह लटकाए बैठे रहे। राजा ने शिष्टाचार वश उन्हें कुछ देकर विदा किया।

के 47, नवीन शाहदरा,
दिल्ली–११००३२

हिमाचल प्रदेश में
प्रचलित कुछ विश्वास एवम् परम्पराएं

—तिलकराज निर्मोही

देव भूमि हिमाचल प्रदेश के लोगों का जन-जीवन अत्यन्त सरल है। यहां के निवासियों के रीति रिवाज, विश्वास एवं परम्पराएं देश के अन्य भागों के रीति रिवाजों, विश्वासों एवं परम्पराओं से थोड़े भिन्न हैं। भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न विश्वासों एवं परम्पराओं को मान्यता प्राप्त है। हिमाचल निवासियों के जीवन में इन परम्पराओं एवं विश्वासों का महत्वपूर्ण स्थान है तथा इनके परिणामों के सम्बन्ध में हिमाचल वासी आज भी बड़े सजग रहते हैं। प्रदेश में प्रचलित कुछ विश्वास एवं परम्पराओं का उल्लेख करते हुए मैं उनके परिणामों के सम्बन्ध में प्रदेश वासियों की कुछ धारणाओं का भी उल्लेख कर रहा हूं।

पांव की खारिश : विश्वास किया जाता है कि यदि पांव के नीचे खारिश हो तो कहीं जाना पड़ेगा। यदि खारिश दाएं पांव में हो तो यात्रा सफल रहेगी तथा यदि बाएं पांव में हो तो यात्रा सफल न होने का भय बना रहता है।

पांव पर पांव आना : यदि किसी व्यक्ति के पांव पर किसी अन्य का पांव आए तो विश्वास किया जाता है कि जिन दो व्यक्तियों के पांव ऊपर नीचे आए हैं उनमें से किसी एक के यहां कोई न कोई अतिथि आएगा।

हाथ की खाज : हाथ में खाज होने का अर्थ धन के आने या जाने से लिया जाता है। दाएं हाथ की खारिश का अर्थ धन आना तथा बाएं हाथ की खारिश का अर्थ पैसे का खर्च होना माना जाता है।

नाक की खाज : नाक पर खाज होना अशुभ माना जाता है। बीमारी आदि के आगमन का सूचक है। इस दोष से बचने के लिए उल्टे जूते से नाक को खुजलाया जाता है।

जूते पर जूते का चढ़ना : यदि जूते पर जूते चढ़ें तो विश्वास किया जाता है कि कहीं दौड़ होगी अर्थात् कहीं जाना पड़ेगा।

पानी के घड़े में तिनके भरे जाना : यदि कुएं से पानी भरते समय उसमें घास आदि का तिनका भरा जाए तो विश्वास किया जाता है कि मेहमान आयेगा।

घराट से आटा पिसवा कर यदि बरामदे या आंगन में रखा जाए : ऐसा करने पर भी मेहमानों के आने की सम्भावना रहती है तथा यह विश्वास किया जाता है कि यह आटा मेहमानों का ही गुजारा होगा।

सांप द्वारा रास्ता काटना : अशुभ समझा जाता है। परन्तु यदि सांप राह काट कर दाहिनी ओर चला जाए तो अच्छा होता है। यदि सांप रास्ता काट डाले तो उस राह पर तब तक नहीं जाना चाहिए जब तक हरा पत्ता तोड़ कर उस राह पर न फैंका जाए। ऐसा करने से दोष मुक्त हो जाते हैं। तथा सांप द्वारा रास्ते काटने का कोई भय नहीं रहता है।

घर में सांप काट खाए : यदि सांप मकान के अन्दर काट खाए तो बहुत खतरा समझा जाता है तथा आदमी के बचने की आशा बहुत कम की जाती है।

घर के बाहर सांप काट खाए : यदि घर से बाहर सांप काट खाए तो रोगी के बचने की आशा की जा सकती है।

घर के अन्दर सांप मारना : घर के अन्दर सांप मार कर उसे द्वार के रास्ते बाहर फैंकना अशुभ समझा जाता है। सांप को किसी सुराख आदि के रास्ते से बाहर फैंका जाना चाहिए।

घर में घुग्गी का आना : घर के अन्दर घुग्गी का आना अशुभ समझा जाता है। यदि घुग्गी घर के अन्दर घुस जाए तो जिन्दा नहीं छोड़ना चाहिए।

रोटी पकाते समय रोटी का टूटना : यदि रोटी पकाते समय कच्ची रोटी हाथ से टूट जाए तो विश्वास किया जाता है कि फसल टूट जाएगी।

कोयलों की लकीरें लगाना : कोयलों की लकीरों के लगाए जाने से ऋणी होने का भय रहता है।

चूल्हे से तवा खाली उतारना : सिरमौर में चूल्हे से रोटी पका चुकने पर तवा खाली नहीं उतारा जाता है। एक रोटी ऊपर रहने दी जाती है तथा नीचे रख कर ही रोटी तवे से उतारी जाती है। खाली तवा उतारना अशुभ माना जाता है।

छींक का आना : किसी द्वारा याद किए जाने का विश्वास किया जाता है। रोगी को छींक आना अच्छा समझा जाता है तथा उसके बचने की आशा की जाती है। कहीं जाते समय छींक का आना अच्छा नहीं समझा जाता है। खाते, बैठते समय छींक आना अच्छा समझा जाता है।

पानी का भरा मटका मिलना : घर से बाहर चलते समय पानी का भरा घड़ा मिलना बड़ा शुभ माना जाता है। घड़ा यदि खाली मिले तो अशुभ माना जाता है तथा काम के न होने का विश्वास किया जाता है।

सावन के मास में चूल्हा बनाना : अशुभ समझा जाता है तथा चूल्हे में सांप के निकलने का भय बना रहता है।

लकड़ी का बंधा हुआ गट्ठा घर के अन्दर ले जाना : लकड़ी का बंधा हुआ गट्ठा घर के अन्दर ले जाने की परम्परा नहीं है। यह अशुभ समझा जाता है।

भादों का जन्म : भादों में लड़के का जन्म अच्छा तथा लड़की का जन्म अच्छा नहीं समझा जाता है।

प्रसव पीड़ा को छुपाना : विश्वास किया जाता है कि यदि आरम्भिक प्रसव पीड़ा को छुपाया न जाए तो बच्चा जनने में मां को अधिक कष्ट सहना पड़ता है। परन्तु यदि आरम्भिक पीड़ा को छुपाया जाए तो अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ता है।

टोकरी, मटका व झाड़ू का इकट्ठा रखना : जिला कांगड़ा में इन चीजों को इकट्ठा रखना अशुभ समझा जाता है। किसी की मृत्यु के बाद ही इन तीनों को इकट्ठा करके कहीं रास्ते में रखने की परम्परा है।

दाढ़ी बढ़ा लेना : सिरमौर में दाढ़ी बढ़ाना अशुभ समझा जाता है। ऐसा घर या परिवार में किसी की मृत्यु पर शोक व्यक्त करने के लिए ही किया जाता है।

शरीर से वस्त्र उल्टे उतारना : पहने हुए वस्त्र उल्टे उतारना जिला चम्बा, कांगड़ा, हमीरपुर तथा ऊना में अशुभ समझा जाता है। क्योंकि ऊल्टे वस्त्र तो मुर्दे के शरीर से ही उतारे जाते हैं।

जला हुए वस्त्र का पहनना : सारे प्रदेश में आग द्वारा जले हुए वस्त्र को पहनना अशुभ समझा जाता है।

बिना सिले कपड़े को बिना तह लगाए कहीं ले जाना : अशूभ समझा जाता है क्योंकि बिना तह लगाए तो सदा कफन ही जाए जाते हैं।

चूल्हे की आग का फड़फड़ाना : दिन के समय चूल्हे की जलती आग का फड़फड़ाना बहुधा अशुभ समझा जाता है। यदि रात के समय आग भड़फड़ाए तो विश्वास किया जाता है कि कहीं निन्दा की जा रही है। या कहीं कोई और बात चल रही है।

कुत्तों तथा बिल्लियों का रोना : किसी की मृत्यु की सम्भावना का प्रतीक है।

शादी से पहले सिलाए हुए कपड़ों को शादी के बाद पहनना : शादी से पहले पहनने वाले वस्त्रों को शादी के बाद न पहनने की परम्परा है क्योंकि विश्वास किया जाता है कि शादी के पहले पहने जाने वाले कपड़ों को शादी के बाद पहनने से सुन्दरता कम हो जाती है।

रोगी के पास एक व्यक्ति का जाना : रोगी के पास एक व्यक्ति का जाना शुभ माना जाता है तथा दो या अधिक व्यक्तियों का एक साथ जाना जिला कांगड़ा में अशुभ माना जाता है।

रोगी को जम्भाई आना : रोगी को जम्भाई आना अशुभ माना जाता है।

घर से बाहर जाते समय दूध पीना : अच्छा नहीं समझा जाता है।

घर से किसी के जाने के बाद पानी लाना : यदि कोई व्यक्ति घर से जाए तो सबसे पहले पानी भर कर लाने की परम्परा है। पानी लाना शुभ माना जाता है तथा झाड़ू देना या कपड़े धोना अशुभ माना जाता है।

बुध या शनि के दिन पहाड़ की ओर जाना : अशुभ माना जाता है। बना बनाया काम बिगड़ जाता है ऐसा विश्वास किया जाता है।

रोगी द्वारा मांस या दूध मांगना : यदि रोगी मांस या दूध मांगे तो उसके स्वस्थ न होने का विश्वास किया जाता है।

बिल्ली के बच्चों का बरसात से सम्बन्ध : विश्वास किया जाता है कि बिल्ली जितने बच्चे देती है उतने महीने ही वर्षा ऋतु रहती है।

रोगी का पीठ के बल सोना : अशुभ समझा जाता है।

पेट या कमर के बल रोगी का सोना : शुभ समझा जाता है।

रोगी को छींक आना : रोगी को छींक आना शुभ समझा जाता है।

स्वप्न में टट्टी दीखना : वर्षा होने की सम्भावना रहती है।

ओठों की थिरकन : चुम्बन की सम्भावना का प्रतीक।

नये वस्त्र व नये आभूषण पहनने का समय : बुध और शनिवार के दिन नये वस्त्र तथा रविवार के दिन नया आभूषण पहनना चाहिए। ऐसा विश्वास किया जाता है।

पक्षियों का पानी में नहाना : यदि पक्षी पानी में नहाए तो वर्षा नहीं होती। ऐसा विश्वास किया जाता है।

वीरवार को भाई बहन का बिछुड़ना : अशुभ समझा जाता है।

रोगी को पालकी में बैठा कर डाक्टर के पास ले जाना : अशुभ माना जाता है।

दो व्यक्तियों द्वारा डाक्टर को बुलाने जाना : अशुभ होता है ।

नववधु के लिए पहली बरसात : कांगड़ा, ऊना, चम्बा, बिलासपुर, मण्डी, हमीरपुर आदि जिलों में नववधुएं बरसात के दिनों का भादों माह अपने मायके में काटती हैं । जबकि सिरमौर में नव-वधुएं अपनी शादी के बाद पहली बरसात का सावन माह अपने मायके काटती हैं। ऐसी परम्परा है। दूसरे वर्ष में नव वधुएं यह मास अपने-२ ससुराल में काटती हैं । वधुओं के लिए पहले वर्ष इन महीनों में अपने ससुराल तथा दूसरे वर्ष अपने मायके में ठहरना अच्छा नहीं समझा जाता है। पहले वर्ष नववधु को इन महीनों में अपने ससुराल में ठहरना सास के लिए तथा दूसरे वर्ष मायके ठहरना अपनी मां के लिए अच्छा नहीं माना जाता । उन्हें रात के समय इकट्ठे दीपक नहीं देखना चाहिए ।

अमावस के दिन चरखा कातना : सुहागिन स्त्रियों को अमावस के दिन चरखा कातना प्रदेश भर में अच्छा नहीं माना जाता है ।

श्राद्ध के दिनों में मकान लीपना : श्राद्ध के दिनों में मकान को मिट्टी लगाना अच्छा नहीं समझा जाता है ।

पंचक के दिनों में नया झाड़ू बांधना : अशुभ समझा जाता है ।

भादों में मिट्टी लगाना तथा नई रजाईयां भरना : वे स्त्रियों भादों में नई रजाईयां नहीं भर सकतीं जिनका जन्म भादों में न हुआ हो तथा न ही वे घरों को मिट्टी ही लगा सकती हैं। जबकि भादों में पैदा हुई स्त्रियों के लिए यह मनाही नहीं है ।

चलते समय दूध का पात्र मिलना : चलते समय दूध का पात्र मिलना अशुभ समझा जाता है ।

रविवार के दिन आंगन में गोबर लीपना : रविवार के दिन आंगन में गोबर लीपने से वर्षा होने की सम्भावना रहती है ।

नमक पिसने वाली सिल पर पत्थर रखे रहना : नमक पीसने वाली सिल पर यदि नमक पीसने वाला पत्थर रखा रहे तो कर्ज चढ़े रहने का डर रहता है ऐसा विश्वास किया जाता है ।

मंगलवार के दिन मेहमान का चले जाना : अशुभ माना जाता है ।

कठफोड़े का बोलना : विश्वास किया जाता है कि किसी की मृत्यु हो गई है ।

पांव के अंगूठे के साथ वाली उंगली का अंगूठे से बड़ा होना : जिस व्यक्ति के पांव के अंगूठे के साथ की उंगली बड़ी हो, विश्वास किया जाता है कि उसकी पत्नी उस पर रोब रखा करेगी ।

उल्लू का बोलना : अशुभ माना जाता है ।

सर्पों को कुश्ती करते देखना : अच्छा होता है ।

खाना खाते समय उंगलियों को पृथक रखना : घर में खाद्यान्न की कमी होने का भय बना रहता है। ऐसा विश्वास किया जाता है।

भादों माह में मधु-मक्खियां मिलना : अशुभ होता है।

चारपाई पर दीवा जला कर रखना : अशुभ माना जाता है।

गीदड़ों का रोना : अशुभ माना जाता है।

खाना खा कर थाली में हाथ झाड़ना : अशुभ माना जाता है। खाद्यान्न की कमी पड़ सकती है।

स्वप्न में सोना चांदी मिलना : बुरा होता है।

भादों में गाय का सू पड़ना : अशुभ होता है।

सावन में घोड़ी का सू पड़ना : अशुभ होता है।

दिन में घोड़ी सूना : अशुभ समझा जाता है।

शुक्रवार के दिन मेंहदी, पुदीना तोड़ना : विश्वास किया जाता है कि शुक्रवार के दिन मेंहदी या पुदीना तोड़ने से ये सूख जाते हैं।

शुक्रवार के दिन बांस काटना : शुकवार के दिन बांस काटने से बांस सूख जाते हैं।

रोटी खाते समय थाली को पांवों के अंगूठों पर रखना : अच्छा नहीं माना जाता है।

स्वप्न में जुएं पड़ना : बीमारी के आने का विश्वास किया जाता है।

स्वप्न में विवाह देखना : मृत्यु की सूचना मानी जाती है।

वीरवार के दिन वस्त्र धोना : वीरवार के दिन वस्त्र धोने से दरिद्रता आती है। ऐसा विश्वास प्रचलित है।

दसवें दिन वस्त्र धोना : अशुभ माना जाता है।

दसवें दिन हजामत करना : अशुभ माना जाता है।

स्वप्न में मन्दिर दिखना या मन्दिर में जाना : बीमारी आने का विश्वास किया जासा है।

ऊखल पर बैठना : फोड़े फिंसियां निकलती हैं।

राजकीय विद्यालय, मानगढ़,
बरास्ता सराहां, जिला सिरमौर,
हिमाचल प्रदेश।

हिमाचली लोक-गाथाएं – संस्कृति और इतिहास

–अरुण 'भारती'

लोक-गाथाएं किसी भी देश-प्रदेश की संस्कृति, इतिहास और दर्शन का प्रतीक हैं। हिमाचल प्रदेश में, जहां विषम भौगोलिक स्थितियों और अनेक भाषाओं का संगम है, वहीं लगभग हर स्थान से जुड़ा उसका अपना इतिहास है। यही इतिहास, किन्हीं अनजान सृजकों ने लोक-गाथाओं के रूप में जन जिह्वा पर बैठा दिया है।

एक समय था जब इन गाथाओं को सुनने के लिए ग्रामीण, गांव के देवी–देवता के चौरे पर इकट्ठे हो जाते थे। अलाव के गिर्द ढोल, डमरू और शहनाई के संगीत के साथ लोक-गाथाएं रात भर गाई जातीं। प्रातः देवी–देवता के गुर उनका विसर्जन करते। आज भी यह परम्परा चली आ रही है। किन्तु अब इस परम्परा को निबाहने में वह उत्साह क्षीण पड़ता जा रहा है।

सब से प्रमुख और हिमाचल के अतिरिक्त उत्तरी भारत के अनेक स्थानों पर गाई जाने वाली गाथा 'गुग्गा चौहान' की है। यह असौज मास से लेकर शरद् पूर्णिमा तक गाई जाती है। गायक प्रायः चार होते हैं, दो-दो के जोड़े में। जो 'गुगमल' की छड़ को फूलों से सुसज्जित कर, गांव-गांव, घर-घर घूम कर इस गाथा को गाते हैं। यह गाथा डमरू की ताल देकर गाई जाती है। लोग चावल, गेहूं, पैसे या अन्य वस्तु गुग्गा की 'नज़र' करते हैं। बदले में गुग्गा चौहान का गुर फूल या गेहूं के दाने रक्षा कवच के रूप में लोगों को देता है। इस गाथा के साथ लोगों की धार्मिक आस्थाएं बन्धी हैं। गाथा का एक रूप :

किस ब्याहणे औणा मालणी,
कदियां रा लगन रखाया ?
ऐसा कुण आ राजा तिसरा जे
नौ लख हाथी एथी औणा।
मालण बोलदी, गुरु गोरख नाथ
सुणया तू ध्यान लगाई
मारू देसा दा राजा सुणिदा
गुगमला ब्याहणे औणा··· ।

(ऐ मालिन, ये कौन ब्याह करने आ रहा है ? कब विवाह का मुहूर्त है ? ऐसा कौन राजा है, जिसके नौ लाख हाथी यहां आएंगे ? मालिन ने उत्तर दिया, "हे गुरू गोरखनाथ, ध्यान से सुनिए, मरू देश के राजा का नाम सुना है ? वे ही राजा गुगमल विवाह करने आ रहे हैं।)

इस गाथा को हिमाचल के हर इलाके में अपनी-अपनी भाषा में गाया जाता है। लोगों की अनेक आस्थाएं इस गाथा के साथ जुड़ी हुई हैं। यह गाथा उस पुरातन संस्कृति का प्रतीक है, जब इस देश में ऋषियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। सत्य असत्य पर हावी था। विद्वत्ता का सम्मान किया जाता था। इसी के साथ, इतिहास को इस गाथा में सुरक्षित रखा गया है।

नीला तेरा चल्या हमलुए,
पुज्या जुद्धा बिच जाई,
जंगी ढोल बजेया गनीणों,
दो दल जुझणी जो आए।

(नीला घोड़ा सवार को लेकर युद्ध स्थल की ओर बढ़ गया। जंगी ढोल बजने लगे। दोनों सेनाएं आमने-सामने आईं। घमासान युद्ध छिड़ गया।)

इस गाथा में, तत्कालीन युद्ध शैली, राजनीति और धार्मिक प्रथाओं का पूरा विवरण मिलता है। देखा जाए तो इस गाथा में भारतवर्ष का वह काल वर्णित है, जब राजा और प्रजा के बीच एक सीधा सम्पर्क था। ऐसी ही गाथा, 'राजा भरतरी' है।

प्यूंगला राणी महले आई।
राणी राजे जो बोलदी।
कदी बी नी खेलया सकार।
छत्री धर्म ए बोलदा।
राजेया खेलणा चाइदा सकार।
पंजा देयां राणी कपड़ेयां मेरे।
पंजां देयां तू बाण।
तेरी गल्ल मैं लई सुणी।
मैं सकार खेलणे जाणा।

(राणी पिंगलां ने महल में आकर राजा को समझाया कि शिकार खेलना राजा का धर्म है। इस पर राजा भर्तृहरि ने रानी से अपने वस्त्र और शस्त्र मंगाकर कहा कि वह उसकी बात मान कर शिकार खेलने जाएगा।)

इस गाथा में वर्णित भर्तृहिरणी के सम्वाद, यदि प्रतीकात्मक शैली से देखा जाए तो प्रजा-राजा के बीच के सम्वाद हैं। राजा भर्तृहरि को हिरणी की प्रार्थना पर भी जब दया नहीं आई तो हिरणी कहती है :

सुणी ले राजा मेरी बात,
एड़ा जे बछोड़ा हाए असां जो पया,
तेड़ा ही राणी प्युंगला जो पौंणा।

(हे राजन, सुनो ! विछोह का जैसा दुःख मैंने तुम्हारे कारण पाया ऐसा ही पिंगला रानी को भी होगा।)

हिमाचल की लोक गाथाओं में जहां इतिहास और संस्कृति की झलक मिलती है, वहीं तात्कालिक दर्शन की झलक भी है। उक्त गाथा में, राजा भर्तृ अपने कृत्य पर पश्चाताप करने के लिए सन्यास ले लेता है। मां और पत्नी के पूछने पर वह उन्हें अपने कृत्य की कहानी सुना कर कहता है कि महल, भोग विलास और अनेक सुविधा प्राप्त व्यक्ति, अपराध की ओर ही उन्मुख होगा। वह किसी समाज या प्रजा का रहबर कैसे बन सकता है, जिसके पास अनुभव की कमी है? शायद यही कारण था, जिसने भर्तृ के मन में सत्ता त्याग की भावना को उकसाया।

हिमाचल की लोक-गाथाओं में पौराणिक गाथाओं का विशेष महत्व है। बरलाज (विभिन्न गाथाएं जो रामायण और सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बन्धित है) अनेक स्थानों में आज भी वही महत्व रखता है, जो गुग्गा चौहान की गाथा रखती है।

यह गाथा कई पौराणिक कथाओं का सार है। शिमला, सोलन और सिरमौर जिले के कुछ इलाके में, बरलाज रामामण की कथा पर आधारित हैं।

हणु बे हुन्दरिया नाचा।
बोलो सूरज मूंहां दा राखा।

(हनुमान ने खेलते-खेलते अचानक सूर्य को मीठा फल समझ कर मुंह में भर लिया।)

इस गाथा का आयोजन भी गुग्गा चौहान की गाथा की तरह ही किया जाता है। जागरण में हर घर से एक सदस्य की उपस्थिति आवश्यक है। हर आने वाला व्यक्ति 'अलाव' के लिए 'रहटी' (जलाने की लकड़ी) अवश्य लाता है। सुबह होते ही इसका विसर्जन देवी देवता के 'गुर' करते हैं।

देखा जाए तो इन गाथाओं का सम्बन्ध आस्थाओं तक ही सीमित नहीं है। मानव समाज की आधार शिला रखने में, इन गाथाओं का पूर्ण सहयोग कहा जा सकता है।

उस युग में मानव को एक सूत्र में बांधने के लिए यह आवश्यक था कि लोगों को किसी ऐसी परम्परा से जोड़ दिया जाए जो उन्हें आपसी मेल जोल बढ़ाने में सहायक रहे। एकता और सहयोग की भावना का उदय हो। बरलाज की एक और किस्म, सृष्टि की रचना :

पहला नांव नारायण रा, जुणिए धरती पुकासी,
जलथल होई पिरथवी मनसा राखी जगाली,
माणू न ओले कीएं रिखी एक ई राजा ओला।

पहला नाम भगवान का जिसने धरती बनाई। किन्तु महाप्रलय के बाद कोई आदमी नहीं बचा, मगर एक ऋषिराज बच गए। अढ़ाई दाने सरसों बीज कर सरसों उगाई। किन्तु सभी चीजें तब भी अरक्षित थीं। तब भगवान ने 'मनशा देवी' की सृष्टि की। देवी को सात कलश देकर उनकी रक्षा करने को कह स्वयं बारह वर्षों के लिए सो गए।

पहले कलश से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। दूसरे से विष्णु और तीसरे कलश से महादेव की उत्पत्ति हुई। मनशा देवी ने सभी देवों से अपने विवाह का निवेदन किया किन्तु ब्रह्मा और विष्णु ने नकार दिया। जिस पर क्रोधित होकर देवी ने इन दोनों को भस्म कर दिया। महादेव ने पहले शर्त रखी कि उसके दोनों भाइयों को वह जीवित कर दे। तब देवी ने अमृत से दोनों देवों (ब्रह्मा, विष्णु को पुनर्जीवित किया। तब महादेव, विष्णु और ब्रह्मा ने देवी से कहा कि विवाह तभी हो सकेगा जब पहले सृष्टि की रचना होगी। इस प्रकार देवी को सन्तुष्ट कर ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की। चन्द्रमा को कलाएं दीं। जीवन को संस्कार और सामाजिकता।

'ऐंचली' गाथा में इसी गाथा का दूसरा स्वरूप है :

गुगले री धूणी धुखाई गुरुए,
से धूणी गुरुए भस्म कराई,
अंगे मली मली लाई,
अंगे मली–मली मलूणी कराई,
तिस मलुणी री मूरत बणाई,
पढ़ी ता गुणी दिता जीवा दान
खड़ी होई मनसा देई
बारह बारहे दी होई 'मनसा देई'
तां नदी पर न्हाणे जांदी
गुरुए दी भृष्टा लगाई
मनशा होई पैरा भारी .....।

गुरू ने गुग्गल की धूनी धधकाई फिर इस धूनी की राख को अपने शरीर पर मला। उससे निकले मैल को मूर्ति का रूप दिया। फिर उस मूर्ति में जीवन का संचालन किया। इस प्रकार मनसा देवी का जन्म हुआ। बारह वर्ष की आयु में जब मनसा देवी नदी पर नहाने गई तो उसके निर्वस्त्र शरीर पर गुरू मोहित हुए। मनसा के गर्भ ठहर गया। पहले ब्रह्मा हुए, फिर विष्णु फिर महादेव। जब वे जवान हुए तो गुरू ने सृष्टि की रचना का भार महादेव को सौंपा और स्वयं अन्तर्ध्यान हो गए।

उक्त दोनों गाथाएं सृष्टि के विषय में हैं। सृष्टि के मूल में नर-नारी के सम्बन्धों को स्वीकारती हुई। उस समय, जब समाज में निरक्षरता और अपढ़ता का बोल-बाला था, इतिहास को जीवित रखने के लिए, लोक गाथा कितनी सहायक थी, शायद वे सृजक इस बात को भली भान्ति समझते थे। धार्मिक भावनाओं को लोगों तक पहुंचाने के लिए लोक-गाथाओं का अपना एक विशेष स्थान है।

कुल्लू में गाई जाने वाली 'मादेव युकुन्तरस' गाथा, महादेव के विवाह की गाथा है। 'कुन्ती-नन्ती' में महाभारत कालीन सभ्यता और कथा की झलक है।

क्या जो कोरा विष्णु नारेणा
माउले जुगे मऊल्याणी नांई
बुइत आसा युकुन्तरासो बेटी ।   (मादेव युकुन्तरस)

(विष्णु भगवान दुविधा में पड़ गए। मामा के लिए मामी कहां से लाए। तब पता लगता है कि युकुन्तरस के दो बेटियां हैं। विष्णु भगवान अष्ट प्रधान देवता के साथ महादेव की सगाई करने युकुन्तरस के पास जाते हैं।)

शागे शाड़ सारी खाणो मेरे,
शागे शाड़ी से तीने कैं मारी ?
नाई गैंओ भीमा कौंरूए बाड़े।

(मैं साग के इस खेत को खा जाऊंगा। उन्होंने (कौरवों ने) इस खेत पर कैसे अधिकार कर लिया है? ऐसा कह कर भीम कौरवों के घर चला गया। दुर्योधन ने जब उस से पूछा तो भीम ने कहा कि तुम्हारी पत्नी (नन्ती) ने मेरी मां (कुन्ती) की पिटाई साग के खेत पर की। अब या तो मुझे खेत का सारा साग खाने दो या फिर जुए में साग का खेत जीत कर दिखाओ।)

उक्त गाथाओं में पौराणिक इतिहास और संस्कृति की झलक मिलती है। आज के सन्दर्भ में भले ही उक्त गाथाओं में अतिशयोक्ति का भास हो किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों को नकारा नहीं जा सकता।

महाप्रलय के पश्चात् पृथ्वी पर जीवन कैसे रहा? इस बारे में अनेक मतभेद हैं। किसी भी धर्म के लोग इस विषय में कोई भी निश्चित मत नहीं बना पाए हैं। विज्ञान की खोज अपनी जगह पर है। हिन्दू धर्म के अनुसार, पृथ्वी पर महाप्रलय के पश्चात्, ईक्ष्वाकु मनु ने सृष्टि की रचना की। इसी आस्था के साथ जुड़ी ये गाथाएं हैं। हिमाचल प्रदेश की धरती पर, एक नहीं अनेक तपस्वियों ने, ऋषियों ने अपने जीवन भर खोज की। इन्हीं ऋषि-मुनियों की वाणी जब जन-साधारण तक पहुंची, तो दन्तकथाएं बनीं। दन्त कथाएं धीरे-धीरे गाथाओं में बदल गई। अनेक देवताओं और देवियों की इस भूमि पर, लोगों को धर्म की शिक्षा और धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न करने का कितना सरल उपाय था यह। खास कर उस युग में, जब निरक्षरता का बोल-बाला था।

लोक-गाथाओं का जन्म इसी काल से होता है। कालान्तर में भाषा के अपरूपित होने के साथ-साथ इनका स्वरूप भी बदलता गया।

इतिहास को भी इन गाथाओं में समुचित स्थान मिला है। 'सामा-दौलतू', 'गढ़ मलौण' 'सूरमा मदना' 'धार देशू' आदि अनेक गाथाएं, हिमाचल में हुए राजनैतिक परिवर्तनों की साक्षी हैं।

इक बिलासपुरा रा सहर सुहाणा
ठण्डा सतलुजा रा पाणी आ
परजा तेरी राजा पाणी पिंदी
साहबा री फेरा दी दुहाई आ।   (गढ़ मलौण)

चुपी रोह जा बेटिए चढ़ाई नी माणो
खीमे री फौज एकी थाली रा खाणो। (सामा-दौलतू)

इक मुगले री बोलदी जी
पहाड़िया राजा आया जी
आया नौकर म्हारा जी
रोसे ओई राजा बोलया
ओ जी हांऊं जे सई हुंगा
राजा जगत पठाणिया
बीणी रिया बिटगा पछाड़िया जी। (राजा जगता)

इन गाथाओं में मुगल कालीन इतिहास की छाप स्पष्ट है। पहाड़ी राजाओं की आपसी तकरार और तत्कालीन संस्कृति की झलक मिलती है। अनेक ऐसी गाथाएं हैं, जो समय के साथ-साथ विस्मृति के गह्वरों में खो गई हैं। इस दिशा में यदि प्रयास किया जाए, तो इतिहास के कितने ही लुप्त तथ्य सामने आ सकते हैं। सामन्ती युग के साथ ही गाथाएं जहां अपनी भव्यता को खो चुकी हैं, वहां वे धीरे-धीरे लोप होती चली जा रही हैं। पूर्ववर्ती पीढ़ी के लोग इस अमूल्य धरोहर को आज तक जीवन दिए हैं, किन्तु नई पीढ़ी का इस ओर रूझान नहीं है।

देखा जाए तो रक्ष संस्कृति का प्रभाव धीरे-धीरे हमें उस मूलभूत संस्कृति से बहुत दूर ले जा रहा है, जिस संस्कृति ने दूसरे महाद्वीपों को अपनी उज्जवलता से कभी दीप्त कर दिया था। ऐसे कठिन समय में इन गाथा रूपी धरोहरों का उद्धार करना अत्यावश्यक है, जबकि हम अपनी संस्कृति की पहचान बनाए रखने की आवश्यकता महसूस करते हैं।

द्वारा श्रीमति सुशीला मेहता
वरिष्ठ पर्यवेक्षक
नगरान्तर दूरभाष
केन्द्रीय तारघर, शिमला–१

★✲★

हिमाचल के लोक-गीतों में करुणा रस

दुर्गादत्त शास्त्री

काव्य के नौ रसों में करुणा रस का अपना ही स्थान है। हृदय के अन्तस्तल तक पहुंचने वाला यह रस कठोर से कठोर मन वाले मनुष्य को भी इस प्रकार पिघला देता है जैसे आग कठिन से कठिन धातु को पिघला देती है। करुणा रस के आगे सम्पूर्ण चेतन जगत विह्वल हो उठता है। समग्र प्रकृति में उथल-पुथल मच जाती है। सूर्य के वियोग में रात्रि ओस के कणों के मिष से अश्रु प्रवाह छोड़ती है। धरातल जब प्रचण्ड धूप से संतप्त होकर प्यासी हो जाती है तो हिम पर्वत करुणा में गोते खाने लगता है और समवेदना में लीन अपने चिर संगृहीत हिम कोष को लुटाने लग जाता है। प्रचण्ड ग्रीष्म में संतप्त विरही को सान्त्वना देने के लिए कोयल 'कू कू' करने लग जाती है। राम के वन गमन के समय सारी प्रकृति रो उठी। कैकेयी और मन्थरा का हृदय भी मोम बन गया। भगवान कृष्ण जब गोकुल छोड़ कर मथुरा चले तो केवल गोप-गोपियां ही नहीं बल्कि मूक प्राणियों की आंखें भी आंसुओं से छलछला गईं। करुणा रस का चितेरा महाकवि भवभूति आज अमर है।

हिमाचल के लोक-गीतों में करुणा की छलछलाती गंगा सब को आप्लावित कर देती है। विशेष कर कन्या के विवाह सम्बन्ध में यह करुणा पराकाष्ठा तक पहुंच जाती है और उसमें ही सच्ची करुणा का रस स्वाद होता है। भारत की प्राचीन संस्कृति हिमाचल में सजीव रूप में उपस्थित होती है।

कन्या का ज्यों ही जन्म होता है माता-पिता को उस के वर की चिन्ता लग जाती है :

जिस दिन कन्या जन्मी आई, मात-पिता सिर चिन्ता छाई :
पुत्री ममता बहुत सताए, पर धन समझत मन भरमाए :

माता-पिता के घर में बड़े लाड़ प्यार से कन्याओं का पालन पोषण होता है। कन्याएं भी अपने माता-पिता की भरपूर सेवा-सुश्रूषा करती हैं। धीरे-धीरे जब यह सात्विक प्यार अपनी चरम सीमा तक पहुंच जाता है तो कन्याओं के विछोह का समय आ जाता है। यह विछोह वस्तुतः अपने पैर पसारने से पहले ही माता-पिता के हृदय को कुरेदने लग जाता है। कन्याओं के इस सात्विक प्यार की करुण कथा हिमाचल में विशेष रूप से देखने को मिलती है और यह भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग है।

महर्षि कण्व के आश्रम में शकुन्तला का पालन पोषण बड़े लाड प्यार से हुआ। पक्षियों के साथ खेलती और आश्रम के पौधों को पानी देती हुई शकुन्तला को देख कर महर्षि भावविभोर हो उठते थे। समय बीतता गया। शकुन्तला विवाह के योग्य हो गई। महर्षि को उसके वर की चिन्ता सिताने लगी। शकुन्तला का राजा दुष्यन्त से मिलन हुआ। महर्षि को अपने तपोबल से

उनके भावी सम्बन्ध का ज्ञान हो गया। अब महर्षि को शकुन्तला के विरह की चिन्ता सताने लगी। जिस दिन शकुन्तला ने कण्व के आश्रम को छोड़ कर पति-गृह के लिए प्रस्थान किया था उस दिन महर्षि के मन पर क्या बीती थी इसका विशद वर्णन महाकवि कालीदास ने अपने शाकुन्तल नाटक के चौथे अंक के चार श्लोकों में किया है जिनके सम्बन्ध में साहित्कार इस प्रकार लिखते हैं :

काव्येषु नाटकं श्रेष्ठं तत्रापि च शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयी :।

अर्थात् काव्यों में नाटक श्रेष्ठ है, नाटकों में शकुन्तला, शकुन्तला में चौथा अंक और उसमें भी चार श्लोक। यह वही चार श्लोक हैं जिन में शकुन्तला के पति-गृह को प्रस्थान करते समय महर्षि कण्व की मानसिक स्थिति का वर्णन है :

'यास्यत्यद्य शकुन्तला पतिगृहं मे मानसं व्याकुलम्।'

हिन्दी रूपान्तर :

पतिगृह आज शकुन्तला करती है प्रस्थान।
पीड़ा मर्मान्तिक मुझे सता रही है आन।

तदनन्तरवर्ती कवियों ने भी कन्याओं के इस सात्विक सम्बन्ध का मनमोहक वर्णन किया है :

गेहात्पुत्री प्रचलति यदा सद्म पत्युर्वराकी यान्ती चाग्रे नयनसलिलैः क्षालयन्ति स्वमार्गम्।
मातुश्चित्तं पितुरपि तथा कर्षयन्तीव बाला कारुण्याब्धौ सकलकुलजान् मातृपक्षे करोति।
(वत्सला नाटकम्)

हिन्दी रूपान्तर :

पति-घर सुता चले जब भाई, सब ही ओर उदासी छाई।
नयन पानी बहे सब ऐसे, जलधर बरसें धरणी जैसे।
करुणा सागर बान्धव डोलें, वचन परस्पर इस विध बोलें।
मात-पिता मन खींचे ऐसे हंसी नाल कमल को जैसे।

अब आइये हिमाचल के लोक-गीतों में करुणा का रसास्वाद करें। कन्या जब सुसराल चलती है तो किस प्रकार पितृ-घर तथा सुसराल का करुणामय तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत करती है :

अग्गे अग्गे चालदी पिच्छे पिच्छे देखदी, बड़ा ई सुहावना बौए जी दा देश ए।
हाथी इत्थूं झूलदे घोड़े इत्थूं हिणकदे, बड़ा ई सुहावना बौए जी दा देश ए।

अब सुसराल की सुनिये :

अग्गे अग्गे चालदी पिच्छे पिच्छें देखदी, बड़ा ई डरौअणा सौहरे जी दा देश ए।
गीदड़ ओथूं रोमदे कुत्ते ओथूं भौंकदे, बड़ा ई डरौअणा सौहरे जी दा देश ए।

हिन्दी रूपान्तर :

आगे आगे पग धरे आंखें पीछे दूर।
पितृघर बड़ा सुहावना गज अश्व भरपूर।
गीदड़ कुत्तों से भरा ससुर देश भय देत।
पर जाना मुझ को वहां कुल मर्यादा हेत।

एक अन्य लोक-गीत जिसे कन्या की विदाई के समय आंसुओं की झड़ी के साथ स्त्रियां गाती हैं और गाते-गाते उनका गला रुंध जाता है :

बोल नीं मेरिये रण वण कोयले, रण वण छोड़ी तूं कहां चल्ली एं।
बौएं तां साडें बचन जें कीते, वचनां दी मारी मैं हुण चल्ली आं।

हिन्दी रूपान्तर :

बोल कोयल आज कहां जाती यह वन छोड़।
पिता ने थे वचन किये लीना जीवन मोड़।

भला भारत की कन्या अपने पिता के वचन को कैसे टाल सकती है। जहां पिता ने उसका सम्बन्ध निश्चित किया है वहीं उसे चुपचाप जाना होगा।

एक अन्य लोक-गीत जिसमें जमाता से अनुरोध किया जाता है कि वह पुत्री से अच्छा व्यवहार करे। यदि उससे कोई भूल भी हो जाए तो भी अन्दर बैठ कर ही समझाना जिससे लोगों में उसका अपमान न हो :

सुण बे सुण बे भले दिया पुत्ता, गल इक साडी सुणयां बे।
जे साडी बेटी कम न जाणें, अन्दर बै समझायां बे।

हिन्दी रूपान्तर :

मात-पिता के भद्र सुत सुनो हमारी बात।
बेटी से यदि भूल हो अन्दर ही समझात।

जब कन्या की डोली को कुछ दूर पहुंचाने के लिए भाई बन्धु ही अपने कन्धों पर उठा कर ले चलते हैं तो करुणा से लिप्त एक अन्य गीत :

तेरयां महलां दे अन्दर बे, बाबल मेरी गुडियां रहियां।
तेरियां गुडियां पुजाई दिघें नीं, धिये घर जा अपणें।

हिन्दी रूपान्तर :

गुड़ियां तो घर आपके रहीं हमारी तात, हम तो बिछुड़ी चलीं दूर भई सब बात।
गुड़ियां पुत्री आपकी भेजें तेरे साथ, जाओ तुम घर अपने ध्याओ अपना नाथ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिमाचल के लोक-गीतों में एक ऐसा करुणा का प्रवाह है जो मानव को विशेष अनुभूति के क्षितिज तक पहुंचा देता है।

हिमाचल के लोक-गीत करुणा रस की धार।
इस धारा में स्नान करो पाओ जीवन सार।

ग्राम व डाकघर नलेटी,
तहसील देहरा गोपीपुर,
जिला कांगड़ा (हि०प्र०)

जापान की कला में सरस्वती

–शशि बाला

विद्या और वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की पूजा भारतवर्ष में आदि काल से होती रही है। वैदिक, ब्राह्मण तथा पौराणिक साहित्य में अनेकत्र अनेक रूपों में सरस्वती का उल्लेख किया गया है। वेद में देवी सरस्वती को अग्नि जिह्वा कहा गया है – 'अग्निजिह्वा सरस्वती' इसके माध्यम से याज्ञिक आराध्य देव से बात कर सकता है। पुराणों में इसे ब्रह्मा की पुत्री और पत्नी कहा गया है। महाभारत के अनुसार यह दक्ष प्रजापति की पुत्री है। भुजाओं में वीणा और पुस्तक लिए 'वीणापुस्तकधारिणी'; श्वेत पद्म पर आसीन कही गई है 'श्वेतपद्मासना'; शुभ्र वस्त्र धारण करती है 'शुभ्रवस्त्रावृता'; हंस इसका वाहन है।

भारतीय संस्कृति के प्रचार के साथ-साथ सरस्वती वन्दना भी पूर्वी एशिया के अनेक देशों में जन-जीवन में व्याप्त हो गई। जापान देश में सरस्वती देवी के अनेक मन्दिर बनाए गए। कोकि-जी के विहार[1] में मुख्य मन्दिर सरस्वती का है। यहां सरस्वती की विशाल प्रतिमा स्थापित की गई है। इसकी दो भुजाएं हैं जिनमें वीणा है। पूर्णिमा और अमावस्या के दिन सरस्वती की पूजा की जाती है। विहार में वार्षिक होम उत्सव मनाये जाते हैं। उत्सव के अवसर पर काष्ठ पट पर सरस्वती का चित्र तथा माहात्म्य लिख कर सभी श्रद्धालुओं में बांटा जाता है। यह माहात्म्य १८९६ ई० में विहार के अधिकारी भिक्षु वेन् काईशिन् ने लिखा था। माहात्म्य में कहा गया है कि कोकि-जी विहार के मुख्य मन्दिर में सरस्वती देवी गुह्य रूप में हैं। गुणों से युक्त है, शाक्य मुनि तथागत की पत्नी है। सभी प्राणियों की कृपालु मां है। इसके गुणों से तीन सहस्र लोक आलोकित होते हैं, यह धन देती है, अद्‌भुत ज्ञानवती है, दीर्घायु और प्रसन्नता प्रदान करती है, संगीत और वाणी की अधिष्ठात्री देवी है, यह उन्नति करने वाली, विद्या तथा गुणों की देवी होने से 'गुणदेवी' भी कहलाती है। यह वीणा वादिनी है। कौशल के लिए प्रार्थना करने वालों को कौशल प्रदान करती है, धन-धान्य, वक्तृत्व शक्ति, वाणी, संगीत तथा बुद्धि प्रदान करती है। इसकी पन्द्रह सहचरियां हैं। ये प्रथम से पन्द्रहवें दिन तक प्रतिदिन देवी की आराधना करती हैं तथा प्राणियों को विद्या तथा ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। एक सूत्र में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति निर्धन है तो वह मेरा होम करे मैं उसे अनन्त धन दूंगी।[2]

---

1. भिक्षु येन् ने सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र के अट्ठाईस अध्यायों के आधार पर अट्ठाईस बौद्ध विहारों की स्थापना करवाई। कोकी-जी विहार २५वां विहार है। यह विहार कुकाई द्वारा बनवाया गया था। धीरे-धीरे यह विहार शिगोन् रित्सु अर्थात् मन्त्रयान सम्प्रदाय का केन्द्रीय विहार बन गया। अभी तक भी यह संस्कृताध्ययन का केन्द्र है।
2. Escotric Iconography of Japanese Mandalas, Dr. Lokesh Chandra, New Delhi.

जापान में द्विभुजा सरस्वती के और भी बहुत से रूप मिलते हैं। द्विभुजा सरस्वती का चित्रण सब से पहले महाकरुणागर्भ मण्डल में किया गया था। यह मण्डल ८०६ ई० में आचार्य कोषो दाई-शी[1] चीन से जापान लाये थे। यह मण्डल जापान में अनेक बार चित्रित किया गया। इसकी एक प्रति ८२४ ई० के तकाओ के मण्डलों में, एक प्रति शिङोन्-इन् तो-जी में ८९९ ई० की, इसी प्रकार ११९८ ई० तक चित्रित की गई इसकी अनेक प्रतियां प्राप्त होती हैं।[2]

जापान में कोयासान् नामक नगर में स्थित रीहॉकन् के संग्रहालय में एक द्विभुजा सरस्वती का बहुत ही सुन्दर चित्र है। सरस्वती एक शिला पर बैठ कर वीणा वादन कर रही हैं। यह चित्र सिल्क पर मसि: से बनाया गया है।[3]

त्सुरुगायको हाचिमन् के विहार में सरस्वती की एक १३वीं शताब्दी की प्रतिमा है। यह द्विभुजा है। भुजाएं इस प्रकार से बनाई गई हैं कि उनमें एक वीणा दी जाये। प्रतिमा को सिल्क के वस्त्र पहनाए जाते थे। जब यह प्रतिमा बनाई गई थी उस समय कला में यथार्थता की ओर बहुत झुकाव था। देवताओं की पहले मूर्तियां बनाई जाती थीं और तब उन्हें वस्त्र पहनाये जाते थे। द्विभुजा सरस्वती गुण देवी के रूप में भी चित्रित है, एक भुजा वरद मुद्रा में तथा दूसरी भुजा में पद्म है। यह चित्र १३५९ ई० का है। श्री कुहर के पास एक द्विभुजा सरस्वती का चित्र था। दोनों ही भुजाओं में त्रिशूल हैं।

सरस्वती के हाथों की एक विशिष्ट मुद्रा है। यह मुद्रा वीणा मुद्रा कहलाती है। यह जापान में आजकल भी प्रचलित है। यह मुद्रा मुद्राओं की शिङोन् की पुस्तक में भी छापी गई है। यह पुस्तक बौद्ध मुद्राओं का संग्रह है।[4]

जापान में सरस्वती को बेन्तेन् कहते हैं। पूरा नाम है दाई-बेन्-जाई-तेन्। बेन्-तेन् के विषय में अनेक कथाएं प्रचलित हैं। कहा जाता कि है एक बार एक भयानक अजगर ने अपनी गुहा के निकट रहने वाले सभी बच्चों को खा लिया। तब एक भयंकर भूकम्प आया और एक मेघ के टुकड़े पर देवी सरस्वती प्रकट हुई। तभी जल में से एक द्वीप उभरा और देवी उस भूखण्ड पर अवतीर्ण हो गई। यह द्वीप इनोशिमा का द्वीप कहलाया। तब देवी ने उस अजगर से विवाह कर लिया और उसका क्रोध शान्त हो गया। सम्भवतः इसी कथा के कारण कई स्थलों पर अजगर को सरस्वती का वाहन दिखाया गया है।

---

1. को-बो-दाई-शी का अर्थ है धर्मवर्धन महाचार्य। को=धर्म, बो=वर्धन, दाई=महा, शी=आचार्य इन्होंने जापान में संस्कृत पठन-पाठन आरम्भ किया और संस्कृत के आधार पर जापान की काना लिपि का निर्माण किया। ये जापान में बुद्ध धर्म के प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने काश्मीर के आचार्य प्रज्ञातार से शिक्षा ग्रहण की।
2. Saraswati in Japanese Art, Dr. Lokesh Chandra.
3. Chikyo Yamamoto, Cultural Treasures of Koyasam (in Japanese) Koyasan–1965, Plate 51.
4. Dr. Lokesh Chandra, Saraswati in Japanese Art, New Delhi.

यु-काई ने छठी शताब्दी में चीनी सम्राट को अपनी यात्राओं के विषय में लिखते हुए लिखा था कि चीन से उत्तर पश्चिम की ओर एक ऐसा साम्राज्य था जिसमें स्त्रियां सर्पों से विवाह करती थीं। ये सर्प घातक नहीं होते थे। वे भूमि के अन्दर अपने बिलों में रहते थे किन्तु उनकी पत्नियां प्रासादों में रहती थीं। इसी प्रकार इनोशिमा द्वीप की एक और कथा हयशि राजन ने अपनी पुस्तक जिन्शको में लिखी है। कहते हैं कि ताईरा-नो-तोकिमासा नामक एक व्यक्ति एक बार अपने वंशजों की समृद्धि की कामना के लिए इनोशिमा के आश्रमों में गया। बहुत आराधना करने पर देवी एक सुन्दर महिला का रूप धारण कर उसके सम्मुख उपस्थित हुईं। उस व्यक्ति के वंशजों के लिए भविष्यवाणी की और एक सर्प का रूप धारण कर समुद्र में चली गईं।[1]

सम्भवत: इस प्रकार की कथाओं के कारण बेन्तेन् का सर्पों अथवा अजगरों से पर्याप्त समीप का सम्बन्ध माना जाता है। इसी लिए सरस्वती के मन्दिर गुफाओं में, पर्वतों पर अथवा समुद्र के तट पर बनाये जाते हैं।

जापान में सरस्वती को मानने वाले अनेक सम्प्रदाय हैं। कुछ लोग बेन्तेन् को विष्णु की बहन और कुछ लोग वैरोचन का स्त्री-रूप मानते हैं। किन्तु वीणा वादिनी होने से यह सरस्वती है।

आठवीं शताब्दी से लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनों को विष्णु की पत्नी के रूप में पूजा जाता था। नारा नगर में तो-दाई-जी के विहार की वार्षिकी में कहा है कि ७२२ ई० में प्रथम बार किचिजो–गेक्का – लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा का उत्सव हुआ। सम्भवत: इसी वर्ष यहां दोनों देवियों की प्रतिमाओं की स्थापना की गई। तभी से नारा में तो-दाई-जी विहार में किचिजो–गेक्का का यह उत्सव प्रतिवर्ष होता है। तो-दाई-जी में सरस्वती की प्रतिमा शान्त मुद्रा में है। सुन्दर नेत्र तथा होंठ शान्ति का संकेत करते हैं। इसकी आठ भुजाएं थीं। इनमें से अब पांच शेष हैं। किन्तु इनमें भी आयुध नहीं हैं। पहले इसकी भुजाओं में धनुष, बाण, खड्ग, त्रिशूल, कुठार, वज्र, चक्र और पाश थे।[2]

जापान में सौभाग्य के सात देवताओं की सामूहिक रूप से पूजा की जाती है। ये देवता विभिन्न कामनाओं की पूर्त्ति करते हैं, जैसे 'दाई-बो-कु' धन एवं भाग्य के देवता हैं; 'एबिसु, सच्चाई, निष्कपटता, पक्षपातहीनता आदि के; 'बेन्तेन्' रमणीयता, सौजन्य, सुशीलता, सौन्दर्य, संगीत तथा कला की देवी; 'फुकुसेकुज' तथा 'ज्यूरोज़िन्' बुद्धि तथा आयुष्य के देवता; 'बिशमोन्' गौरव तथा प्रतिष्ठा के और 'होताई' उदारता, महानुभावता और प्रसिद्धि के देवता हैं। सहस्रों वर्षों से इन सभी की अलग-अलग पूजा होती रही है। कहा जाता है कि इनमें सर्वप्रथम विश्वास करने वाले व्यापारी लोग थे। विशेष अवसरों पर पूजा के समय भक्त अपनी कामना के अनुसार देवता का आह्वान करता था। जापान में भी सात संख्या बहुत पवित्र मानी जाती थी। इसी मनोवैज्ञानिक कारण से इनकी संख्या भी सात रखी गई और फिर जापानी समूहप्रिय हैं।[3]

---

1. Alice Geitty, the Gods of Northern Buddhism, Tokyo 1962, p. 127–9.
2. Dr. Lokesh Chandra, Saraswati in Japanese Art, New Delhi.
1. The Seven Lucky Gods of Japan, Reiko Chiba.

१४२० ई० में फुशिमि नामक स्थान पर इस सुमंगल सप्तक की एक विशाल शोभा यात्रा का आयोजन किया गया। इस सौभाग्य सप्तक के विषय में भी जापान में बड़ी रोचक कथाएं प्रचलित हैं।

समय के साथ-साथ लोगों में बेन्तेन् पर विश्वास और अधिक दृढ़ होता गया। कलाकारों, चित्रकारों, शिल्पियों, लेखकों और संगीतज्ञों आदि के अतिरिक्त द्यूतकारों को भी बेन्तेन् पर विलक्षण विश्वास था। नव वर्ष के आगमन पर वे सरस्वती के मन्दिरों में जाते और पूजा करते। कहा जाता है कि एक बार कलाकारों ने प्रार्थना की कि उपद्रवी लोगों को निकाल दिया जाए। बेन्तेन् ने भी इस प्रार्थना पर ध्यान दिया और द्यूतकारों के भाग्य में एक ऐसी रेखा लगा दी जिस से उनका विश्वास बेन्तेन् को छोड़ कर अन्य देवताओं की ओर बढ़ने लगा। ऐसी ही और भी बहुत सी कथाएं हैं जो बेन्तेन् की शक्ति को प्रमाणित करती है।

जापान में सरस्वती के अष्टभुजा के रूप के भी अनेक चित्र प्राप्त हुए हैं। तोक्यो विश्व-विद्यालय में १२१२ ई० का बना हुआ एक अद्भुत सुन्दर रंगीन चित्र है। इस चित्र में ऊपर की ओर दो धर्मपाल हैं तथा नीचे की ओर हारीति और मारीचि दो देवियां हैं।[1]

तेरहवीं शताब्दी के एक विद्वान् शोचो ने एक विशालकाय ग्रन्थ लिखा। इसमें इन्होंने अष्टभुजा सरस्वती का चित्र सहित विस्तृत वर्णन किया है। भुजाओं में वही पूर्वोल्लिखित सामान्य आयुध हैं। इसमें लिखा गया है कि सरस्वती का गुह्य लक्षण वीणा ही है।

जापान में स्थित वैभवशाली मन्दिरों में स्थापित सरस्वती की प्राणवन्त मूर्तियों को देख कर जापानी श्रद्धालुओं के मुख से सरस्वती स्तोत्र सुन कर और वहां जन-जीवन में व्याप्त श्रद्धा का साक्षात् कर, किस भारतीय की हृदय-तन्त्री झंकृत न हो जायेगी।

द्वारा श्री कैलाशचन्द्र,
८-ए, राम निवास, बैम्बलोई,
शिमला।

1. Dr. Lokesh Chandra, Saraswati in Japanese Art, New Delhi.

पहाड़ों में नाग पूजा

–अशोक जेरथ

सभ्यता की प्रगति के साथ-साथ समाज के मापदण्डों को बरकरार रखने के लिए कुछ अनदेखी शक्तियों को ईश्वरीय रूप देकर प्रतिष्ठापित किया गया। यह मनुष्य का सबसे बड़ा और चतुराई से पूर्ण अविष्कार था। इन ईश्वरीय शक्तियों में, वे भी शक्तियां थीं जिन्हें मनुष्य समझ नहीं सका था, या जिस तक उसकी पहुंच नहीं हो पाई। वे आतंक का रूप धारण कर गईं अतः पूजक हो गईं। इनमें सूर्य, सागर, ज्वालामुखी पहाड़ आदि प्रकृति के अंश थे। पर इनके साथ-साथ ही सांप, हाथी, गरुड़, आदि पशु पक्षी भी थे। सांप का नागरूप विशेष कर व्यक्ति की मानसिकता को मथता रहा है। उसकी नितान्त अजनबी और अन्तर तक पैंठ पा जाने वाली आंखें, उसका लिज़लिजा शरीर, सर्वशक्तिमान तथा सर्वविद्यमान उसका अस्तित्व जनसाधारण को आश्चर्य में डालता ही था अपितु आतंकित भी करता था।

नाग पूजा के इतिहास को वैदिक काल से खोजा जा सकता है। मोहनजोदड़ों की खुदाई में मिली एक ईश्वरीय शक्ति की एक ऐसी मुहर (Seal) भी मिली है जो पद्मासन में मौलिक स्थिति में बैठी है जिस के दोनों ओर दो व्यक्ति झुके हैं और उनके ऊपर नागफन दिखाए गए हैं।[1]

वैदिक काल में सांपों को नाग न कह कर अही या वृतरः कहा जाता था। ये लोग इन्द्र के दुश्मन होते थे। वृतरः का वध करके ही इन्द्र ने सप्तसिन्धु की उपजाऊ भूमि को छुड़ाया था और सात नदियों को बहने में सहयोग दिया था।[2]

जिस प्रकार इन्द्रनगरी–अमरावती ऐश्वर्य की नगरी के रूप में प्रसिद्ध थी उसी प्रकार भोगवती–नागों की नगरी (पाताल लोक) की भी ऐसी ही चर्चा थी। अनेक पुस्तकों में तो पाताल लोक को और भी सुन्दर माना गया था।[3] किन्तु धीरे-धीरे अही–जिसे दन्तों का ईश्वर माना जाता था, न केवल अनार्यों या दासों का ईश्वर रहा परन्तु आर्य दीर्घाओं में भी ईश्वरीय शक्ति के रूप में प्रवेश कर गया और इसे इन्द्र के समान ही शक्तिशाली माना जाने लगा। यह अही या वृतरः नाग बन कर कैसे उभरा विवादास्पद विषय है किन्तु यह एक अटल सत्य है कि भारत के लगभग सभी प्रान्तों को नाग-संस्कृति ने प्रभावित किया है। अलग-अलग प्रान्तों की

1. Asis Sen : Animal motifs in Ancient Indian Art, p. 41.
2. Ibid, p. 44.
3. विष्णु पुराण, अनुदित एच०एच० विलसन तीसरा संस्करण, पृ० 168.

वंशावली उठा कर देखी जाए तो अनेक राजाओं के नाग की संज्ञा से जुड़े हुए मिलेंगे। नागराज, नागदत्त, नागार्जुन, नागभट्ट, नागेश्वर, नागपाल आदि। भद्रवाह के राज्य को वर्षों तक एक नाग जाति चलाती रही है। एक किवदन्ति के अनुसार राजा नागपाल स्वयं वासुकी नाग का बेटा माना जाता रहा है।

भद्रवाह के राजा के यहां कोई सन्तान नहीं थी अतः किसी साधू के कहने से उसने नाग पूजा की। वासुकी नाग के मन्दिर स्थापित किए और मनौति की कि यदि उसके यहां एक पुत्र का जन्म होगा तो उसे नागराज वासुकी का बेटा समझ कर उसका पालन पोषण किया जायेगा और उसका नाम नागसुत अथवा किसी भी नाग संज्ञा से शुरु किया जायेगा और वासुकी नाग की सोने की प्रतिमा को बना कर मन्दिर में स्थापित किया जायेगा। राजा के यहां एक वर्ष के बाद सुन्दर बेटा हुआ। जन्म से ही वह दीप्तिमान था। राजा स्वयं पाल वंश से था अतः उसने अपने बेटे का नाम केवल नाग रखा जिस के साथ बाद में पाल जुड़ गया। नागपाल का अद्भुत सौन्दर्य और प्रतिभा आयु के साथ-साथ चारों ओर फैलने लगी। कहते हैं उसकी पीठ पर नागफण का चिन्ह था। उन दिनों भारत के सिंहासन पर सशक्त मुगल सम्राट अकबर का शासन था। बातें उस तक पहुंची। उत्सुकता वश उसने नागपाल को राजधानी बुला भेजा। निश्चित दिन नागपाल को सम्राट के सामने पेश किया गया तो अकबर के आगमन पर सारा दरबार झुक गया किन्तु नागपाल उसी प्रकार खड़ा रहा। सैनिक उसे पकड़ने के लिए उसकी ओर भागे तो देखते हैं कि नागपाल की पीठ की ओर से पंचमुखी नाग अपना फण फैलाए उसके सिर पर छत्र बनाता हुआ फुंकार रहा है। सारे दरबार में आतंक फैल गया। अकबर स्वयं झुक गया तो वासुकी नाग अन्तर्ध्यान हो गया।

कश्मीर में अनेक जल स्रोतों को नागों से जोड़ा गया है। वितस्ता का उद्गम प्रसिद्ध जल स्रोत वैरीनाग से माना गया है। उसी प्रकार कुक्करनाग प्रसिद्ध एक स्वास्थ्यप्रद जल स्रोत है। कश्मीर की प्रौढ़ स्त्रियां एक लम्बा सा चोगा पहनती हैं जिस की पीठ पर नाग के आकार का एक कपड़ा होता है जो नीचे जाकर दोमुखी हो जाता है।

डुग्गर के आंचल में नाग देवता का अतिशय महत्त्व है। नाग जल देवता, सन्तान उत्पादक और पृथ्वी को थामे रखने वाला ईश्वर का प्रतीक रूप है। अतः जल स्रोतों, चश्मों, बाउलियों पर नाग खुदे पत्थर सजे होते हैं जिन की पूजा की जाती है। इन्हें मोहरा कहा जाता है। इन मोहरों की अलग-अलग स्थानों पर अपनी-अपनी संज्ञा होती है। जम्मू से करीब आठ किलोमीटर दूर प्रसिद्ध जननायक मियां डिडो के गांव 'जगटी' में एक ऐसे ही मोहरे की पूजा होती है, इसे 'बौला देवता' (बैहरा देवता) की संज्ञा दी गई है। एक बुजुर्ग का कहना है कि वर्षों पहले इस देवता की बड़ी मान्यता थी। जब वर्षा नहीं होती थी या उसकी कमी महसूस की जाती तो दूर दराज से लोग यहां इकट्ठे होते थे। खूब ढोल बजाया जाता था। समय के साथ-साथ ढोल की थाप तेज हो जाती फिर अचानक नीले आकाश पर बादल उमड़ने लगते – देवता जाग उठता था और शीघ्र ही रिमझिम-रिमझिम फुहार शुरू हो जाती। यह कुण्डली मारे हुए सांप की १'×६" चौरस से पत्थर पर खुदी एक साधारण सी आकृति है।

इसी प्रकार जम्मू से करीब एक सौ किलोमीटर उत्तर दिशा में पंचैरी से करीब तीन किलोमीटर ऊपर पहाड़ों के दामन में एक बहुत सुन्दर नक्काशी किए हुए कुण्डली मारे सांप को १'× १' चौरस पत्थर पर उकेरा गया है। इसकी स्थापना बृत्तों की कैनौपी में पक्के थड़े पर की हुई है। इसे 'अक्खड़ देवता' के नाम से जाना जाता है। कहते हैं एक समय यहां खूब जल होता था हरन्तु एक साधू प्यास से मारा घर-घर घूमा पर उसकी किसी ने प्यास नहीं बुझाई तो उसने जल के देवता इस नाग को अपनी तुम्बी (संगीत वाद्य यन्त्र) में रख लिया और चन्द्रभागा (चिनाब) के दूसरी ओर चला गया। तब से इस ओर पानी की कमी बताई जाती है अतः इसे 'अक्खड़ देवता' अर्थात् न मानने वाला माना गया है।

पन्चैरी बाजार से दूसरी ओर एक खेत में अनेक पुराने चश्मे हैं जो सूख चुके हैं। यहां एक स्थान पर बहुत सुन्दर कुण्डली मारे हुए एक नाग की मूर्ति की स्थापना की गई है जिसे वे कुलदेवता के रूप में पूजते हैं। घर में किसी भी प्रकार की असुविधा होने पर यहां बलिदान दिया जाता है। जो पहले बकरे की बलि से सम्पूर्ण होता था परन्तु अब महंगाई के साथ-साथ बकरों की बलि तो नहीं दी जाती अलबत्ता हलुआ चढ़ा कर बलिदान की रस्म पूरी की जाती है।

डुग्गर में नागों को सन्तान उत्पत्ति के लिए भी पूजा जाता है। ऐसी औरतें जिन्हें शादी के बाद सन्तात सुख का सौभाग्य नहीं प्राप्त होता वे नाग पूजा और व्रत उपवास भी करती हैं। सन्तान प्राप्ति पर नागों की मूर्तियां पीतल, कांसे और कई बार चान्दी में मढ़ी हुई नागराज के मन्दिरों में चढ़ाई जाती हैं। ऐसी अनेक मूर्तियां बासुकी नाग के मन्दिरों में भद्रवाह तथा उसके एक गांव गड्ढा में पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं। वर प्राप्त स्त्रियां नागों की बम्मियों के पास कटोरों में दूध या दूध-लस्सी नियमित रूप से रखती हैं अथवा शिवलिङ्ग को जल चढ़ाती हैं। सन्तान उत्पत्ति और लैङ्गिक योग तथा सन्तुष्टि के लिए केवल डुग्गर में ही नहीं अनेक भारतीय प्रान्तों और बाहर अफरीका के कई कबीलों में इन नागों के सन्दर्भ मिलते हैं। प्रसिद्ध एन्थरोपालोजिस्ट फ्रेजर लिखते हैं कि दक्षिणी अफ्रीका के एक कबीले में किशोरावस्था आने पर लड़कियों के पास एक बहुत बड़ा नाग आया करता था।[1] इसी प्रकार ज़िम्मर लिखते हैं कि नाग को सेक्स सिम्बल के रूप में मेसोपोटामियां के लोग भी लेते थे। विशेष कर सन्तान की इच्छुक नारियां पत्थरों पर खुदे नाग की मूर्तियां चश्मों, देवीद्वारों, चौपालों आदि पर चढ़ाती थीं। इन्हें 'नागफल' कहा जाता था। शायद वह परम्परा अभी तक कायम है और धीरे-धीरे इस धरती तक भी पहुंची होगी।

डुग्गर धरती पर 'नाग पंचमी' नाम से नागों के दिन के रूप में एक उत्सव मनाया जाता है। औरतें नागों की तस्वीरें बनाती हैं। दीवारों पर नागों को रंगों, घी, मक्खन आदि से बनाया जाता है। खीर, मालपूए, क्यूर (मैदे की तली हुई एक विशेष प्रकार की रोटी), बबरू (मीठे फूले हुए भठूरे) आदि को बना कर नागों की पूजा की जाती है और फिर परिवार स्वजनो

1. J.G. Frazer, The Golden Bough, Vol. X, 3rd edition, page 31.

को बांटे जाते हैं। यह दिन नई बनी माताओं के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। डोगरा ब्राह्मणों में भी एक जाति 'सपोलिया' नाग वंश परम्परा से सम्बन्धित है। सपोलिया–सांप के बच्चे को कहते हैं।

हिमाचल में प्रचलित लोक-कथा[1] की भान्ति ही यहां एक लोक-कथा प्रचलित है कि एक स्त्री ने एक लड़की और सांप को एक साथ जन्म दिया। सांप जन्म पाते ही एक बिल में घुस गया किन्तु दोपहर को दूध पीने बिल से बाहर आता रहा। मां रोज उसके लिए दूध का कटोरा वहां रख आती। कहते हैं जब लड़की–सांप की जुड़वां बहन शादी योग्य हुई तो सांप अपने बिल से बाहर निकला और सजी हुई दुल्हन के निकट आया। आतंक से उसके पास बैठी सहेलियां भाग गईं किन्तु लड़की स्वयं सब जानती थी। सांप ने वहां एक सोने की मोहर छोड़ी और स्वयं बिल में घुस गया। कहते हैं आज भी उस वंश की स्त्रियां सांपों से पर्दा करती हैं जैसे किसी बुजुर्ग से पर्दा किया जाता है।

इसी प्रकार अनेक दन्तकथाएं पहाड़ों में बिखरी पड़ी हैं जो नाग शक्ति के रहस्यों को खोलती कम बिखरा ज्यादा देती हैं।

१८१, मस्तगढ़,
जम्मू – १८०००१।

---

1. मोलूराम ठाकुर, हिमप्रस्थ (अप्रैल, १९८०), पृ० ३७।

देवता रुदड़ की देव गाथा

—पन्नालाल जोगटा

हिमाचल प्रदेश देवभूमि के नाम से प्रसिद्ध है। देवी-देवताओं का उद्‌भव एवं विकास सृष्टि की रचना के साथ ही प्रारम्भ हुआ माना जाता है और तभी से ही देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित है। पहाड़ी भू-भाग होने के कारण यह क्षेत्र बाह्य शत्रुओं के आक्रमण से लगभग अछूता रहा है। यही कारण है कि यहां की भाषा, संस्कृति तथा वेश-भूषा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। क्योंकि दिन प्रतिदिन में होने वाली घटनाओं का संचित लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं है अतः इन घटनाओं का स्रोत केवल दन्त-कथाओं, अनुश्रुतियों तथा गीतों में ही निहित है।

शिमला जिला की रोहड़ू तहसील में देवता रुदड़ का विशिष्ट स्थान रहा है। इस देवता को महासु देवता का अग्रणी अवतार माना जाता है। देवता का मन्दिर रोहड़ू तहसील के परगना नावर के मध्य में पुजारली नं० ४ में स्थित है। अनुश्रुति है कि माघ मास में सारे देवी-देवता स्वर्ग जाते हैं जहां पर ब्रह्मा की अध्यक्षता में आने वाले वर्ष के लिए विभिन्न देवी-देवताओं को हिस्सा बांटा जाता है। किस देवता को वर्ष का कितना भाग एवं क्या-क्या मिला है इसको माघ तथा फाल्गुन मास की संक्रान्ति के दिन देवता माली द्वारा बताता है जिसे 'बखाणा' या 'परशोआ' कहते हैं। उस दिन वर्ष का पूर्ण ब्यौरा उदाहरणतया वर्षा, फसल, देवता की प्रजा में से कुल कितने मनुष्यों की मृत्यु सम्भावित है, तूफान, विद्रोह, बीमारी इत्यादि के विषय में पूर्ण विवरण दिया जाता है। इस विवरण का शुभारम्भ करने से पहले देवता अपने इतिहास पर पूर्ण प्रकाश डालकर अपनी आत्म-कथा को उद्‌घोषित करते हैं। जिस स्थान पर देवता की उत्पति हुई, वे क्यों वहां से आए, मार्ग में किन-किन परिस्थियों एवं बाधाओं का सामना करना पड़ा और अन्त में उन्होंने कहां स्थायी तौर पर अपने स्थान का चयन किया। इसका पूर्ण विवरण दिया जाता है। उस दिन देवता की प्रजा के लोग उनके मन्दिर के प्रांगण में एकत्रित होकर बड़े चाव से वर्षफल को सुनते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में देवता द्वारा दिये गए बखाणा या परशोआ (व्याख्यान) को मूलरूप में उद्रित किया गया है :

हुणों भाट तो तेरा था सात बटेटु। छौ खा रागशा, जा सातुआरी बारी आई तावा कश्मीरा क तैहरुओ हुणो भाट। बाटे द मिलो कलू, तिणे डराओ कि तेरा जाणा ना डूंइदो कश्मीर। सरमौर ताल टपणो लगा हुणों भाट सूचदो किणैया कश्मीरा ख डूं। कलूआ बोलो तों नोहू हों कश्मीरा ख मुखे का दैआ। हुणा भाटा हूल् फेरका शींगा रो, नौ जुणा रो रोट दीनो हिचो। तावा तीणे हुणो भाट कश्मीरा ख नींहों। देओ ता माणछा का डरा। तिया पहुंचेआ, छारा रा रुड़ा द हुणो भाट दाबो। देवतेआ बोलो माणछा रो बास आओ। शेड़खलीयो बोदो बाहर निकल्। इणे पणशेंड़ दे

जेथेंश्रा दुनियां द हल-चल छौश्रा। तीणें बाहर निकलेंश्रा इणी पणछेड़ा दिणी कि दुनियां बिदे हाले। ताबा विदा देवता नेंइदा बाहर निकला। कलूश्रा तेस गिश रे बद्रे शील भाने हाक दिणे हुणो भाट शीले थालरे खड़ो हुश्रो। चालदा रे पलगे पकड़े। तावा बिदेश्रा खुंमलें किये कि नषेध पड़ेगो का करी। बनंइका बोलो जा एस टालू हों मुखे का देंश्रा। देवतेया फैसलो कियो कि श्रागा धूप-पाछे तखे दीं ले एस श्रामू का टाल्। तावा बनंइका श्रापू श्रार श्राणो। नोलें जावा पहुंचा तावा राबीस खड़ो हुश्रो। बनैइक पूछ दो लागो कि एजो का ड़ा बटेटुश्रा। हुणो भाट बोलदो लागो एजो बा सेश्रो रागीस जिणे मेरा छौ छोरु खा। बनैइका हुणो भाट पिठे पछ पाश्रो। श्रागा श्रापू खड़ो हुश्रो एरा बदला मूं खा एस ना खा। एक शर्त तेरा मेरे मानणे जा मूं चाका न सगलो घूटा। रागसा थोबड़ घुवाड़ो बनंइका फाल दिणे तेरा थोबड़ा द। सगलो घूटो रागीस श्रांदो लगो बाटेद कुडु पहुंचा। बनैइका भीतरी काटणो लाश्रो कुडु लम्बो पड़ंगो। दुर्गा खाण्डेश्रा लाये। बनेंइक पंटा का बाहर निकलो। श्राबा सबी देवतेश्रा सेश्रो रागीस दड़ाएश्रा तौंसा रा कनारा श्राणो। दुर्गा क श्राशीर्वाद दिणो क तोंए काटो रागीस तावा हों बाहर निकलो। श्रामा चीन भाई श्रा ता साथी कश्मीरा का। हुणा भाटा चालदा रे पलगे छूंएं ता साता हफ्ता रो नषेध पाश्रो क धूप-पाचे न खा। सबी देवता मजरे एकीश्रा बाना रा डोडा द पाणे पिश्रो तेरो नाश्रों बनाड़ पड़ो तेरा किया दुईया ठाटा। सेश्रो तिऊं श्रार नहीं श्राश्रो तिणे पकड़े शराचले। घोंलु रा लगे ठेस घोंली गंगा द तेरो नेश्रों पड़ो घोंलू। तिणे खाए तदालें सेश्रों तदाली रहेगो रुदड़े एखली रौ। धारी निकला हूबी। श्रढ़ाल-बशला द पडूं तो टिरे ुका बणछीरा बोलेया मुखें रोटी-पोली ठुंगा ता। सेश्रो बी मुखे ठीक नहीं लगो। टिरी छोंऊ निकलो टिरेद पछू कालका मिली। ढूलारी कालका श्रार जुश्रा-पाशा खोंलदो लगो। एक बाजे पाये तेदे बी हारो दूजे पाये तेदे बी हारो। भूटी रो बाण श्राश्रो तिणें बोलो तेरे जीत कराऊं हों मुखे का दैंश्रा। तेखे चीजी बरशा फेरुश्रा शींगा रो हूल हिछो। ताबा चिजे बाजे पाऐ। ताबा रोदड़ा रे जीत हुए कालका रे हार। तिदरे का टिरे द निकलो। फेरा लगो देखदो केजी बिल डूं। कोटी रा कथरु रा सजार बगोड़ाद ठारा हौल जोचा ना ता। चाकरा रों रूप कियौ ड़ैंश्रो दिणो ठारा हला रे एकी सी लगे तिऊं री सिया द दाबूश्रो चाकरो। बल्द तिया तैंई पलटायेश्रा श्राणा तिदरे का हांडदा भाजा। कथरु ख पडांज दिणे क बल्द नहीं हांडदा। कथरुश्रा बोलो इंऊरा दपारे खाणे ताबा बहाना गाड़दा लगा ना। लैंईक दपारे दिणे। दपारी खाएश्रा उल्टा-सुल्टा डींगेश्रा बल्दा डाक दा लगा। ता बल्द हांडदा भाजा हली कथरु क तौएश्रा पड़ांज दंश्रा। कथरु श्राफी श्राश्रो। बल्दा डाक दो लगो। बल्द ना-हीं ता हांडा। जांगलें गिश बोठो सूंचदो लागो का हुश्रो। चाकरो सिए का बिऊजो कथरु री घुवालें द पड़ो। तेरो मुहरो बणो। सेश्रो निहों घरा। घरा क लगो दोषा करदो। ता चाणो मणीद देवरो। ताबा देवली देवरो चाणो तिया भी ठीक नहीं समझो। पजैंली श्राणो। एक मुहरा उपजो करेउल एक बगोड़ी। चीन दशाला कोठा किया। घराला रो लाश्रो पूजगे खलावने बढारे। कलौंऊ पीया तो फिऊंकरा री गाश्रो तींऊ रो ग्वालो तो रेढ़। तेखे बोलो तू पंया रोज गावो म्हारी। दूजा दूस सेश्रो जागदो रौं। जाबा देखो तिणे चाकरो लगो गाश्रो पिदो तिणे घणुश्रा लाए। से लगे चाकरा दी चुजैंद ता सेश्रो चाकरो बोलदो लागो। तोएं लाए मूदे तू मुं छुंश्रा नहीं। सेश्रो रेढ़ श्राश्रो घरा। तिणे बोलो फिउंकरा भाटा क मोंए भांगो चाकरो सेश्रो ला मुशा। फिउंकरो डो तिणे सेश्रो चाकरो पकड़ो तेरो बी बणो मुहरो।

फिउंकरेश्रा भी श्राणो इदा। तिणो ही मुहरा रो पूरो रथ चाणो। नौं भजो छेंऊ तों सारा गांवा द एक-एक बैले लाऊं तो नौश्रा पोष बढारु तो। झमोच पांजा भजा री जात्रा हौश्रा ती। बैली डूं तो पूनण।"

उपरोक्त का हिन्दी श्रनुवाद अधोलिखित है :

देवता रुदड़ के इतिहास का श्री गणेश हुणे नामक पण्डित से श्रारम्भ होता है जो देवी हाटकोटी के समीप रहता था। उसके सात बेटे थे जिनमें से छः बेटों को एक नर-भक्षी ने वध करके श्रपना भोजन बनाया था। जब केवल एक ही बेटा शेष रह गया तो हुणा पंडित चिन्तातुर बेटे को राक्षस के चुंगल से बचाने हेतु काश्मीर के देवता महासू की शरण में चल पड़े। मार्ग में उसे महासू देवता के वज़ीर कलू मिले। जब पण्डित जी ने उनसे काश्मीर जाने का श्रपना मन्तव्य प्रकट किया तो कलू ने उन्हे भयभीत करते हुए कहा कि वहां जाने के लिए मार्ग बड़ा कष्टदायक एवं भंयकर है। घनघोर जंगल से होकर जाना पड़ता है, सिरमौर ताल (सम्भवतया झील मान-सरोवर) पार करना पड़ता है, माखी रवाल (मच्छर इत्यादि) डंक मारते हैं श्रोखला वृक्ष (यहां इसका श्रभिप्राय महासू देवता के वाद-यन्त्र से है) की भयंकर ध्वनि से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस यात्रा मैं उपरोक्त बाधाश्रों के कारण तुम काश्मीर नहीं पहुंच पाश्रोगे। इस सारे वृतान्त को सुनकर हुणा पण्डित भयभीत हो गया तथा श्रसमन्जस में पड़ गया तभी कलू ने उसे श्राश्वस्त करते हुए धीरज बंधाया कि हताश होने की ऐसी कोई बात नहीं है। मैं तुम्हें काश्मीर पहुंचाकर देवता महासू के दर्शन करवा सकता हूँ बशर्ते इसके बदले में मुझे कुछ इनाम मिले। हुणा पंडित ने उन्हें फेरुश्रा (चूड़ीदार सींग वाले हूल (खड्डू) तथा नौ जुण (लगभग २०० किलो की रोटी) देने का वचन दिया। इस वचन को कार्यन्वित करने हेतू श्रभी तक "जागरा" या जगराता वाले दिन हूल तथा रोट दिया जाता है। तत्पश्चात कलू ने हूणे पण्डित को महासू देवता के मन्दिर काश्मीर पहुंचा दिया। श्रनुश्रुति है कि जब पण्डित जी काश्मीर पहुंचे तो उनके झूड़े का कढेर (चपकन का गर्दन वाला गोलाकार भाग) तथा टोपा रो फेर (बुशहैरी टोपी के चारों श्रोर का केवल कुछ भाग) ही उनके वदन पर शेष रह गया था। कलू ने पण्डित जी को योजना समझाते हुए कहा कि देवता लोग मनुष्य को श्रपने समीप नहीं मानते श्रतः मैं तुम्हें मन्दिर के सामने जहां पर राख पर पत्थर लगाया हुश्रा है उसके नीचे छुपा देता हूं। जब देवता लोग मन्दिर से बाहर निकलेंगे तो मैं तुम्हारे ऊपर वाला पत्थर हटा दूंगा श्रौर तुमने चालदा (महासू) की पालकी पकड़ कर उनको श्रपनी कहानी सुना देना तथा सहायता की याचना करना। समस्त देवतागण को मनुष्य की श्रनुभूति हुई श्रौर देवताश्रों ने शेड़खलीश्रो (द्वारपाल) को बाहर निकल कर इस प्रकार की सीटी देने को कहा जिस से समस्त संसार कांप उठे। द्वारपाल मन्दिर से बाहर निकला तथा वैसा ही किया जिससे सारा संसार भयभीत हो उठे। देवताश्रों के विचार से ऐसा करने से सम्भवतयः समीप के मनुष्यों को भयभीत करके वहां से उनका पलायन करवाना था। तत्पश्चात् सारे देवता मन्दिर से बाहर निकल कर स्नान करने चल पड़े। समय मिलते ही कलू ने हुणे पण्डित पर रखा पत्थर हटा कर उसे सचेत किया। परिणाम स्वरूप हुणे पण्डित ने महासू की पालकी पकड़ कर श्रपनी दर्दनाक कहानी सुनाई तथा उन्हें साथ चलने का श्राग्रह किया। मनुष्य का देवता से स्पर्श होना एक श्रपशगुन माना गया जिस के लिए सारे देवताश्रों ने गोष्ठी में विचार किया कि किस प्रकार इससे

मुक्ति पाई जाए। सारे देवताओं ने पवित्र होने के लिए सात सप्ताह के व्रत की शपथ ली। बनैइक (गणश) देवता आगे आए और उन्होंने कहा कि यदि मैं इस पण्डित के साथ चल कर इसके दुःखों का निवारण करूं तो बदले में मुझे देवता लोग क्या देंगे। देवताओं ने निर्णय किया कि इस कार्य के बदले में सर्वप्रथम तुम्हारी पूजा होगी। बनैइक तथा साथ चलने वाले अन्य दो देवता हुणे पण्डित के साथ काश्मीर से रवाना हुए। चलते-चलते जब नोली नामक स्थान पर पहुंचे तो मार्ग में उनको वह नर-भक्षी मिला। बनैइक ने पण्डित से पूछा कि यह क्या है। पण्डित ने उत्तर दिया कि यही वह नर-भक्षी है जिसने मेरे छः पुत्रों का भक्षण किया है। यह सुन कर बनैइक ने राक्षस के सम्मुख होकर कहा कि तुम मुझे अपना आहार तो बना लो लेकिन एक शर्त है कि मुझे बिना चबाये ही निगलना पड़ेगा। बनैइक ने अपने जेब में तेज धार वाला चाकू तथा कुत्ता बिल्ली भी छुपा करके रखे हुए थे। नर-भक्षी ने अपना मुंह खोला और बनैइक उसके मुंह में कूद गये। शर्तानुसार नर-भक्षी ने बनैइक को बिना चबाये ही निगल लिया और वहां से हाटकोटी की ओर चल पड़ा। बनैइक ने तेज धार वाले चाकू से नर-भक्षी के पेट के अन्दर का कलेजा इत्यादि काट कर कुत्ते बिल्ले को खिलाना प्रारम्भ किया। राक्षस चलते-चलते कुड्डु नामक स्थान पर आया। वहां पर नर-भक्षी की मुठभेड़ दुर्गा मां हाटकोटी से हुई। दुर्गा ने खाण्डे (तेज शस्त्र) से नर-भक्षी पर आक्रमण किया। तभी अवसर पाकर बनैईक भी उसके पेट से बाहर कूद पड़ा। सभी देवताओं ने राक्षस को तोंस नदी के किनारे जो उत्तर प्रदेश के तिऊंगी क्षेत्र से होकर बहती है, बहुत दूर तक भगाया तथा एक चकमक पत्थर की सीमा बान्ध कर नर-भक्षी को चेतावनी दी कि तुम इस सीमा से पीछे किसी भी हालत में नहीं आओगे। अनुश्रुति है कि यह चकमक पत्थर अब भी उस स्थान पर विद्यमान है तथा पत्थर पर कई शस्त्रों के चिन्ह अभी तक अंकित हैं। बनैइक ने दुर्गा माता की कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि तुम्हारे शस्त्र चलाने से हीं मैं नर-भक्षी के पेट से बाहर निकल पाया हूं। नर-भक्षी को भगाने के पश्चात् तीनों देवता पब्बर नदी के किनारे-किनारे चल पड़े। चलते-चलते एक देवता को प्यास ने अधिक सताया। उसने जीर्ण-शीर्ण तथा शिखर से खोखले बान वृक्ष में एकत्रित पानी पी लिया जिस से उसका व्रत टूट गया तथा उसका नाम बनाड़ पड़ गया। उसने दूसरों का साथ छोड़ कर हाटकोटी के समीप शराचली (ठाणा-मांदल) वाला क्षेत्र अपनाया तथा वहीं स्थान ग्रहण किया। हम दोनों पदयात्रा करते हुए अब तंदाली पहुंचे तो मेरे साथी देवता के पांव का अंगूठा पत्थर से टकरा गया (लोक भाषा में इसे धौंल लगना कहते हैं) वह पैदल चलने में असमर्थ हो गया। उसका नाम धौंलू पड़ गया और उसने वहीं तंदाली में स्थान ग्रहण किया। तत्पश्चात् मैं अकेला ही रह गया। तंदाली की धार में सीधा ऊपर चढ़ कर अढ़ाल ग्राम की टीर (चोटी) पर निकला। वहां से मैं प्रत्येक दिन अढ़ाल-बशला के ग्रामों की ओर जाता। वे मुझे बणछीर (देवता के एक वीर के तुल्य) मानते। वह भी मुझे अच्छा नहीं लगा। अढ़ाल की टीर पर चलते-चलते मैं ढूरला की काली के पास पहुंचा और उसके साथ जुए-पाशे का खेल खेलने लगा। जब मैं जुए-पाशे की दो बाजियों में हारा तो बड़ा हताश हुआ। उसी समय समीप रहने वाले भूटी के वाण (वीर) ने मुझे धीरज देते हुए कहा कि वह मुझे कालियों से जुए-पाशे में यदि विजय दिलवायेगा तो मैं उसको बदले में क्या दूंगा। उसको तीसरे साल फेरुआ (चूड़ीदार सिंग वाला हूल खड्डू) देने का वचन दिया। तब तीसरी बाजी डाली गई जिस में मेरी विजय हुई। (वाण को तीसरे साल

हूंल चढ़ाने की प्रथा अभी तक भी इस वचन को निभाने हेतु चली हुई हैं।) उसके पश्चात् चारों ओर दृष्टि घुमाता हुआ मैं सोचने लगा कि अब किस ओर जाऊं। सामनें सजार ग्राम के समीप कोटी ग्राम के कथरु नामक व्यक्ति ने बगोड़े (सपाट बड़ा खेत) में अठारह जोड़ियां बैल हल चलाने हेतु जोत रखे थे। मैं चकोर का रूप धारण करके उड़ कर हल से बनी रेखा (सी) में दुबक कर छुप गया। जैसे ही बैल हल में जुते हुए मेरे पास पहुंचे तो वे मुझ से आगे नहीं बढ़े। हल चलाने वालों के भरसक प्रयत्नों के फलस्वरूप भी बैल टस से मस नहीं हुए। उन में से एक सन्देशवाहक बन कर ग्राम कोटी में कथरु के पास गया और सारी कहानी कह डाली। कथरु ने सोचा कि हल चलाने वाले सम्भवतय: दपारी (विशेष भोज) चाहते हैं अतः बहानेबाजी कर रहे हैं। उसने विशेष भोज बना कर नौकर को पुनः खेत को भेज दिया। विशेष भोज खाने के पश्चात् उत्साहित होकर हल चलाने वालों ने बैलों को अन्धा-धुन्ध पीटना आरम्भ किया फिर भी बैल बिल्कुल आगे नहीं बढ़े। कथरु को पुनः सन्देश भेजकर बुलवाया गया। कथरू ने आकर स्वयं हल में जुते बैलों को चलाने का प्रयत्न किया लेकिन वह निष्फल रहा। वह खेत की मेंड पर बैठकर दोनों हाथ मस्तक पर रखकर किम्कर्तव्यविमूढ़ हो गया। देवता ने सोचा यदि मैं इसी प्रकार छद्म वेष में इन लोगों को सताऊं तो हल चलाने वाले बैलों को पुनः पिटेंगे तथा इस कारण मैं बैलों के पीटने से पाप का भागीदार हूंगा। मैं चकोर का रूप धारण कर उड़कर कथरु की गोद में आ गया तथा मैंने गोद में अपना रूप दुबारा मुहरा (धातु की मूर्ति) में प्रकट किया। अभी तक भी यह खेत 'देवा री लोट' (देवते के खेत) से प्रसिद्ध है तथा उस स्थान पर धूप इत्यादि अब भी दिया जाता है। कथरू इस प्रतिमा को घर ले आया तथा उसे घर में प्रतिष्ठित किया। घर में जाकर एक मन्दिर का भी निर्माण किया। यहां पर भी मुझे ठीक नहीं लगा। वहां से देवली नामक स्थान पर गया वहां भी मन्दिर बनाया गया, वह भी मुझे ठीक नहीं लगा। वहां से मेरे कहने के अनुसार देवीधार (पुजारली नं० ४) लाया गया। वहां पर भी मन्दिर बनवाया गया तथा मैं स्थाई रूप से वहां रहने लगा। करेउल (वर्तमान बदशाल गांव) के समीप एक मुहरा (प्रतिमा) उत्पन्न हुआ तथा दूसरा मुहरा बगोड़ी (वर्तमान ग्राम कोटी के समीप) में अब तीनों प्रतिमाएं देवीधार में एकत्रित की गई। ग्राम धराला का पण्डित पुजारी तथा खलावन ग्रामवासी भण्डारी नियुक्त किया गया।

फियूंकोटी ग्राम के पण्डित ने अपनी गाय चराने के लिए रेढ़ (एक नीच जाति का व्यक्ति) ग्वाला लगा रखा था। कलौऊ (देवता) चकोर के रूप में छदम रूप में उन गऊओं का दूध पीते थे। सायं जब गाय दूही जाती थी तो वे दूध नहीं देती थी जिससे प्रत्येक दिन ग्वाले को प्रताड़नाएं मिलती थी। अपने साथ धनुष बाण लेकर ग्वाला चेतन होकर एक दिन एकटक गायों की ओर देखता रहा जब चकोर ने गाय का दूध पीना आरम्भ किया तो ग्वाले ने अवसर पाकर चकोर पर बाण छोड़ दिया, बाण चकोर की चोंच में लगा और वह घायल होकर वहीं भूमि पर गिर पड़ा। जब ग्वाला चकोर को पकड़ने लगा तो चकोर ने कहा हे ग्वाले ! तुमने मुझे घायल तो कर दिया, मैंने तुम्हारी गाय का दूध पिया है अतः मैं तुम्हें क्षमा करता हूं परन्तु नीच जाति से सम्बन्ध रखने के कारण तुम मेरा स्पर्श न करो। ग्वाला अवाक् रह गया और दौड़ा-दौड़ा गया तथा अपने स्वामी पण्डित को सारी घटना कह डाली। पण्डित जी घटना स्थल पर आये उन्होंने घायल

चकोर को पकड़ा। वह चकोर भी मुहरे (प्रतिमा) में परिवर्तित हो गया। वह प्रतिमा भी देवीधार लाई गई। अब वहां पर चार प्रतिमाएं एकत्रित हो गईं। बतैइक की प्रतिमा समेत छ: अन्य प्रतिमाएं बनाई गई और रुदड़ का पूरा रथ (वाहन) बनाया गया तथा देवीधार (वर्तमान पुजारली नं० ४) में एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण करके वहां मेरी स्थायी रूप से स्थापना हुई। रुदड़ की प्रजा की सीमा तंदाली से आरम्भ होती थी। समस्त परगना नावर, बारेबीश (मण्डल-गढ़ –शीकड़ी खड्ड से आर वाला क्षेत्र), समस्त शदोच (वर्तमान ननखड़ी उप तहसील) मेरा क्षेत्र होता था। भाद्रपद मास के नौ गते को (विक्रमी सम्वत के अनुसार) मैं अपने क्षेत्र के प्रवास पर जाता था। प्रत्येक गांव में एक-एक बैंली (रात्रि) व्यतीत करता था तथा इसी क्रम में चलते-चलते पोष मास के नौ गते को मेरा क्षेत्र का प्रवास पूर्ण होता था तथा मैं अपने मन्दिर (पुजारली नं० ४) को वापिस लौटता था। २५ गते भादों को झमोच (वर्तमान ननखड़ी उप-तहसील के गांव पुनण) के समीप मेरा वार्षिक मेला होता था। रात्रि को पुनण ग्राम से विश्राम करने जाता था। अब यह मेला हर वर्ष २५ भाद्रपद को घड़ीकुपड़ (नकसेटली ग्राम) के समीप मनाया जाता है।

निदेशालय उद्यान विभाग,
हिमाचल प्रदेश शिमला – २।

सृजनहार की खोज

–खेमराज गुप्ता

[स्वप्न संसार का एक संगीत उभरता है – उस संगीत में कोमल स्वर भी हैं, तीव्र भी और कहीं कहीं एक अजीब सी गूंज भी मिली हुई है।]

साहित्यकार : यह किस की चिता जल रही है बाबा ?

बाबा : इससे पहले कि मैं तुम्हारे इस सवाल का जवाब दूं तुम्हें मेरे सवाल का जवाब देना होगा।

साहित्यकार : पूछिए बाबा ?

बाबा : तुम कौन हो, यहां क्या करने आए थे और तुमने यह प्रश्न क्यों पूछा ?

साहित्यकार : मैं साहित्यकार हूं बाबा ! यहां रौशनी देखकर आया था। सोचा था कोई अलाव होगी, रात काटने में मदद मिलेगी। (रुक कर) रही यह बात कि मैंने यह प्रश्न क्यों पूछा, तो बाबा इसका सीधा सा उत्तर है –जब भी किसी अनजाने की चिता जलती कोई देख लेता है, तो उसका पहला प्रश्न यही होता है जो मेरा था।

बाबा : मेधावी, कल्पनाशील और मौलिक साहित्यकार प्रतीत होते हो।

साहित्यकार : लगभग सभी मेरे बारे में ऐसा ही कहते हैं बाबा। (रुक कर) मेरे प्रश्न का उत्तर देंगे न बाबा।

बाबा : अवश्य ! (रुक कर) यह चिता उन यादों की है जो वर्षों तक मेरे साथ रहीं लेकिन जब मुझे आत्म ज्ञान हो गया और मैंने जान लिया कि साधू का कर्तव्य क्या है ? तो मैं ने यह चिता प्रज्वलित की है, मुझे यादों से कोई वास्ता नहीं, वास्ता अगर है तो सिर्फ याद से।

साहित्यकार : मैं समझा नहीं बाबा।

बाबा : मेधावी हो, कल्पनाशील हो, मौलिकता भी है तुम्हारे पास, यह चिता संसार की प्रतीक है, बस और कुछ न कहूंगा।

[तभी एक नारी स्वर उभरता है जो निर्मला का है]

निर्मला : आत्मा अजर है, अमर है।

साहित्यकार : मानता हूं, पर आप .... !

निर्मला : मैं निर्मला हूं। निर्मला –बाबू उदयभानु लाल की बड़ी लड़की।

साहित्यकार : ओह ! प्रेमचन्द कृत ?

निर्मला : हां, प्रेमचन्द कृत निर्मला। बाबू उदयभानु लाल और कल्याणी की पुत्री, कृष्णा की बड़ी बहन, मुन्शी तोता राम की दूसरी पत्नी।

साहित्यकार : लेकिन इस समय यहां इस चिता के पास।

[Flash back संगीत उभरता है]

कृष्णा : उदास क्यों हो दीदी ! इसलिए न कि तुम्हारा विवाह निश्चित हो गया है।

निर्मला : नहीं कृष्णा ऐसी बात नहीं है। न जाने मेरा मन कुछ उदास-उदास सा है।

कृष्णा : क्या मुझे भी इसी तरह इस घर से जाना होगा एक रोज ?

निर्मला : और नहीं तो क्या तू बैठी रहेगी। हम लड़कियां हैं हमारा घर कहीं नहीं होता .. .. (रुक कर) कृष्णा चन्द्र भैया के साथ घूमने चली गई। सच ! दुःखी हृदय, दुखती आंख की पलक में हवा से भी पीड़ा होती है। बाबू जी कहते थे बारातियों की खूब सेवा होनी चाहिए, मां ने कहा था–

कल्याणी : जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची है तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न नहीं रख सका। उन्हें दोष निकालने और निन्दा करने का कोई न कोई अवसर मिल ही जाता है।

उदयभानु : आखिर तुम क्या करने को कहती हो कल्याणी ?

कल्याणी : कह तो रही हूं पक्का इरादा कर लो पांच हजार से अधिक खर्च न करूंगा। इतना कर्ज क्यों लें कि जिन्दगी में अदा न हो। आखिर मेरे और भी तो बच्चे हैं, उनके लिए भी तो कुछ चाहिए।

निर्मला : और बाबू जी तथा अम्मा जी में बहुत झगड़ा हो गया था। बात यहां तक पहुंची कि बाबू जी ने जल कर अम्मा कहा था–

उदयभानु : तो अब समझ लूं कि मरने के दिन निकट आ गए, यही तुम्हारी भविष्य वाणी है। सुहाग से स्त्रियों का जी न ऊबाते ही सुना था, आज यह नई बात मालूम हुई, रंडापे में कोई सुख होगा ही।

निर्मला : बात बहुत बढ़ गई और बाबू जी गुस्से में घर से निकल पड़े थे और 'मतई' की लाठी ने उनके प्राण ले लिए। (स्वगत) जीवन, तुम से ज्यादा असत् भी दुनिया में कोई वस्तु है ? क्या यह उस दीपक की भान्ति ही क्षण भंगुर नहीं है जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है ? पानी के एक बुलबुले को देखते हो, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है, जीवन में उतना सार भी नहीं है। उफ !

[शहनाइयां गूंजती हैं निर्मला का विवाह हो जाता है।]

निर्मला : हां, मेरा विवाह हो गया। भालचन्द्र के पुत्र भुवन मोहन से नहीं, दुहाजू वकील मुन्शी तोताराम से। मनसा राम, जियाराम और सियाराम उनके तीन बेटे पहली पत्नी से थे। कहां मैं, कहां मुन्शी तोताराम। मुझे याद है भगत सुखराम के कहने पर मेरे पति ने क्या-क्या किया था। रोज अपनी जवांमर्दी के कोरे किस्से घड़घड़ कर सुनाया करते थे। एक रोज़ रात के यही कोई नौ बजे होंगे, बांके बने हुए सैर से लौटे और बोले–

तोताराम : सुनती हो निर्मला, आज तीन चोरों से सामना हो गया। एक ने कहा "रख दे पास में जो कुछ भी है और चुपके से चला जा।"

निर्मला : हाय राम ! फिर ?

तोताराम : मैं छड़ी सम्भाल कर खड़ा हो गया, मैंने कहा मेरे पास तो सिर्फ यह छड़ी है और इसका मूल्य है एक आदमी का सिर। तीनों ही मुझ पर झपटे, लेकिन मैंने उनकी एक भी न चलने दी। यह कहते ही भाग गए कि गांव के गांव ढोल बजा कर लूटते हैं पर आज तुमने हमें नीचा दिखा दिया। हम तुम्हारा लोहा मान गए।

निर्मला : तब तो छड़ी पर तलवारों के बहुत से घाव बने होंगे ?

तोताराम : (झेंप कर) मैं वारों को बराबर खाली कर देता था, दो चार चोटें छड़ी पर पड़ी तो बस उचटती हुई, जिन से कोई निशान नहीं पड़ सका।

निर्मला : (स्वगत) मैं मन ही मन हंस पड़ी थी। मुन्शी जी अपनी जवांमर्दी दिखाने के चक्कर में अजीब-अजीब हरकतें करने लगे थे। मैं सोचती इन्हें सचमुच कोई भीषण रोग हो रहा है। मैं इनकी सेवा कर सकती हूं, अपना जीवन इनके अर्पण चरणों में कर सकती हूं, लेकिन वह नहीं कर सकती जो मेरे किए नहीं हो सकता। अवस्था का भेद मिटाना मेरे बस की बात नहीं। लेकिन मैं यह सब बातें देर से समझी। उसके बाद मैंने अपने को कर्तव्य पर मिटा देने का निश्चय कर लिया। संसार के सभी प्राणी सुख सेज पर ही तो नहीं सोते। मैं भी उन्हीं अभागों में हूं और मैंने वही किया जो मुझे करना चाहिए था। मैं उनके आने के वक्त सजधज कर खड़ी रहती। हां मनसाराम से मुझे बहुत स्नेह था और वह भी मुझे बहुत स्नेह करता था। लेकिन क्या पता था उसका मेरे प्रति यही स्नेह, एक रोज उसके प्राण तक ले लेगा। पिता के मन में पुत्र के प्रति सन्देह होगया, मेरे प्रति भी। मैं जब अस्पताल में उसे अपना खून देने गई तो मुन्शी जी को यह अच्छा नहीं लगा था। मनसाराम जो खाट पर से हिल न सकता था उठ कर खड़ा हो गया। मेरे पैरों पर गिर कर बोला–

मनसाराम : अम्मा जी, इस अभागे के लिए आपको व्यर्थ इतना कष्ट हुआ। मैं आपका स्नेह कभी नहीं भूलूंगा। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आप के गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो सकूं। ईश्वर जानता है, मैंने आपको विमाता नहीं समझा। आप की उम्र मुझ से ज्यादा न हो, लेकिन आप मेरी माता के स्थान पर थी और मैंने सदैव आपको उसी दृष्टि से देखा ... ...अब .. ..नहीं बोला ... ...जाता अमां जी... ... क्षमा कीजिए। यह अन्तिम .. ..भेंट है।

निर्मला : (स्वगत) क्या जीवन में इस से बड़ी विपत्ति की कल्पना की जा सकती है ? क्या संसार में इससे अधिक नीचता की कल्पना की जा सकती है। मुझे मनसाराम से हंसने बोलने में एक अपार सुख का अनुभव होता था जिसे मैं शब्दों में प्रकट नहीं कर सकती, कुवासना की मेरे मन में छाया भी न थी। मैं सपने में भी मनसाराम से कलुषित प्रेम की बात नहीं सोच सकती थी प्रत्येक प्राणी को अपने हमजोलियों के साथ हंसने बोलने की जो नैसर्गिक तृष्णा होती है, उसकी तृप्ति का वह अज्ञात साधन जरूर था।

[Flash Back खत्म होता है और साहित्यकार की आवाज़ आती है।]

साहित्यकार : मैंने तुम्हारा वृतांत पढ़ा है निर्मला ! मैं तुम्हारी करूण कथा से परिचित हूं। तुम्हारे सृजक की रचनाओं को कौन नहीं सराहता।

निर्मला : (हंसती है) तुमने सिर्फ पढ़ा ही है मैंने उसे भोगा है जिया है उसे–मनसाराम मर गया जियाराम मर गया–सियाराम मर गया और जब मैं भी मर गई तो मुन्शी तोताराम मेरी लाश के सामने उस समय आ खड़े हुए थे जब मुझे चिता पर ले जाने की तैयारियां पूर्ण हो चुकी थी और लोग पूछ रहे थे–दाह कौन करेगा –(रुककर) यह चिता देख रहे हो न- . तुमने इसे अलाव ही तो समझा था–मैं ढुण्ड रही हूं अपने उस सृजक को–सिर्फ एक सवाल पूछने के लिए ... ... ।

साहित्यकार : कौन सा सवाल है वह निर्मला ।

निर्मला : तुमसे पूछने का नहीं है वह न ही तुम्हारे पास उसका उत्तर होगा–मैं अपने सृजक से ही पूछना चाहती हूं-इसीलिए इस चिता के गिर्द मण्डलाती रहती हूं आखिर मेरे सृजन कर्त्ता का भी यही अन्त हुआ था न-मिलेगा तो पूछूंगी जरूर !

[तभी एक लेखक जिनका नाम प्रवीण हैं साहित्यकार की पीठ पर हाथ रखते हुए कहते हैं यह प्रवीण जी प्रेमचन्द जी की कहानी 'लेखक' के नायक हैं ।]

प्रवीण : अरे आप–और यहां ।

साहित्यकार : जी हां लेकिन .. .. आपकी तारीफ ।

प्रवीण : (हंसकर) मुझे प्रवीण कहते हैं ।

साहित्यकार : ओ अच्छा-अच्छा ! 'लेखक' के नायक प्रवीण जी–यानि महाशय प्रवीण ।

प्रवीण : जी हां ! शुक्र है आप मुझे जानते हैं ।

साहित्कार : आपको कौन नहीं जानता प्रवीण जी । आपको अगर सुमित्रा जैसी सुघड़ पत्नी न न मिलती तो शायद आप .. ..।

प्रवीण : इतना महान न बनता–यही न !

साहित्कार : नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था ! मैं कहना चाहता था कि अगर आप को सुमित्रा जी जैसी सहनशील और सुघड़ पत्नी न मिलती तो आप एक सच्चे लेखक का जीवन न जी पाते ।

प्रवीण : आपसे सहमत हूं । जब मुझे राजा साहब का निमन्त्रण मिला तो मैंने सोचा कि दुनियां में कदरदानों की कमी नहीं है । मेरा तो अब भी यही विश्वास है कि दीपक का काम है जलना उसका प्रकाश फैलता है या उसके सामने कोई ओट है उसे उससे प्रयोजन नहीं ।

साहित्यकार : आप ठीक कहते हैं ।

प्रवीण : मेरे सृजक ने जब मेरा सृजन किया तो यही मूलमंत्र भी साथ दिया कि साहित्य सेवा पूरी तपस्या है ।

[तभी नशे में मस्त दो आवाजें उभरती हैं जो घीसू और माधव की हैं ।]

माधव : कौन कहता है कि दो ईश्वर नहीं होते ?

घीसू : (जरा बूढ़ी आवाज़ में) होते होंगे बेटा माधव होते होंगे–पर तेरी घरवाली बुधियां अगर मरती नहीं तो आज यह भर पेट पूरियां और इस नसे पानी का प्रबन्ध न पाता ।

माधव : तभी तो कहता हूं दादा–ईश्वर एक नहीं दो हैं । एक तो है वो–यानी ऊपर वाला-भगवान और दूसरा वह घीसू दादा यानी मेरे पिता का सृजन किया-मेरा सृजन किया-बुधिया की मौत की तस्वीर खींची ।

घीसू : अरे हां-क्या कफन मिला होगा बुधिया को !

माधव : तुम्हीं जानो दादा–मैं तो उस रोज भी कह रहा था मर कर जब मैं भी उसके पास जाऊंगा तो वह बुधिया मुझ से पूछेगी कि कफन क्यों नहीं जुटाया था मेरे लिए।

घीसू : छोड़ बेटा–मर कर बुधिया ने हमारी आत्मा को प्रसन्न कर दिया तो उसे पुत्र जरूर मिला होगा।

माधव : (हंस कर) बड़ी अच्छी थी बेचारी-मरी भी तो खूब खिला पिला कर... ... ...पर दादा ... ... ।

घीसू : हां-हां बोल न–क्या बोल रहा था।

माधव : वोऽ .. .. क्या नाम था–हां प्रेमचन्द-प्रेमचन्द।

घीसू : हां-हां।

माधव : मिलें तो उनके चरण छू कर कहूं कि महाराज धन्य हो आप ! लोग तो बड़ों-बड़ों की कथा कहानियां लिखते हैं आपने हम नीचों तक को अमर कर दिया। बुधिया को कफन चाहे मिला या न मिला पर हम कफन में अमर जरूर रहेंगे। सदा के लिए हमेशा के लिए।

घीसू : ठीक कहता है तू बेटा।

माधव : चलो दादा उन्हें ढुण्डें–चरण छुएंगे उनके—

घीसू : चल बेटा—

(दृश्य परिवर्तन)

[दूर से कहीं पांजेबों और पांवों पायलों की झंकार धीरे-धीरे करीब आ रही है। कभी-कभी कोई मधुर स्वर वाली नारी हंसती है।]

साहित्यकार : यह कौन होगी भला ? कितनी सुन्दर-कितनी रूपवती–कौन हो सकती है यह ?

निर्मला : इसे नहीं पहचानते साहित्यकार महोदय।

साहित्यकार : चेहरा तो कुछ जाना पहचाना सा लगता है निर्मला जी।

निर्मला : 'निर्मला जी' नहीं सिर्फ निर्मला कहिए। किसी ने भी मुझे निर्मला जी कह कर कभी नहीं पुकारा। अपने लिए 'जी' सुनने की अभ्यस्त ही नहीं हूं।

साहित्यकार : क्षमा चाहता हूं।

निर्मला : अपने सिवाए–मैं सबको क्षमा करती ही रही हूं (रुक कर) हां पहचाना।

साहित्यकार : कुछ-कुछ।

निर्मला : यह है जालपा।

साहित्यकार : जालपा ? रमानथ की पत्नी।

निर्मला : बिल्कुल ठीक ! रमानाथ की पत्नी, दीनदयाल की पुत्री, दयानाथ की पुत्र वधु–लेकिन सब से बढ़ कर है इसका परिचय 'गबन की नायिका'।

साहित्यकार : आपका इसके प्रति क्या विचार है।

निर्मला : मुझ से लगभग सात वर्ष छोटी है। मेरा सृजन १९२३ में हुआ था जबकि इसका १९३० में।

साहित्यकार : हां उसके चन्द्रहार की लालसा, गहनों से प्रेम, उसकी उदारता, उसका रूप, उसका स्वभाव एक सजीव पतिता जैसा था न !

निर्मला : लो वह आ ही गई है तो उसी से पूछ लो न ?

साहित्यकार : जालपा जी, कहिए कैसी बीत रही है ?

जालपा : जो बीती सो बीती' जो बीत रही हैं वह तो तुम साहित्यकार लोग ही जानते होंगे, मैं तो आज कल एक ही बात सोचा करती हूं।

साहित्यकार : भला वह क्या ?

जालपा : (हंस कर) कौड़ियों से रुपये बनाना बणिकों का ही काम है। बाबू लोग तो रुपये की कौड़ियां ही बनाते हैं।

साहित्यकार : यह अटल सच्चाई हैं। ध्रुव सत्य है। आपके समय भी यही होता था। आज भी यही हो रहा है।

जालपा : साहित्यकार महोदय, हम स्त्रियां गहनों कपड़ों के लिए बदनाम जरुर हैं। यह हमारी भावनाओं को उकसाने वाले पुरुष ही तो होते हैं। मेरे पति तथा बाबू मुझ पर ही जी-जान से कुर्बान होते थे। मेरी हर इच्छा पूर्ण करने में उन्हें असीम आनन्द मिलता था। मैं अपनी कमजोरियों के प्रति जागरूक हो ही न सकी।

साहित्यकार : अपनी कमजोरियों पर जिन की नजर जाती है जालपा जी वे लोग कुछ और ही किस्म के होते हैं। उन्हें हम दुनियादारों की श्रेणी में नहीं रख सकते।

जालपा : लेकिन न जाने क्यों आज भी मुझे अपने पति के साथ हुई वह बात चीत याद है।

[Flash back संगीत उभरता है।]

जालपा : अच्छा अब मैं एक प्रश्न करती हूं। सम्भले रहना। तुम मुझ से क्यों प्रेम करते हो ? तुम्हे मेरी कसम है सच बताना।

रमानाथ : यह तो तुमने बेढब प्रश्न किया। अगर मैं तुम से यही प्रश्न पूछूं तो मुझे क्या जवाब दोगी।

जालपा : मैं तो जानती हूं।

रमानाथ : बताओ।

जालपा : तुम बतला दो, मैं भी बतला दूंगी।

रमानाथ : मैं तो जानता ही नहीं। केवल इतना ही जानता हूं कि तुम मेरे रोम-रोम में रम रही हो।

जालपा : सोच कर बतलाओ। मैं आदर्श पत्नी नहीं हूं, इसे मैं खूब जानती हूं। पति सेवा अब तक मैंने नाम को भी नहीं की। ईश्वर की दया से तुम्हारे लिए अब तक कष्ट सहने की जरुरत नहीं पड़ी। घर गृहस्थी का कोई काम मुझे नहीं आता जो कुछ सीखा यहीं सीखा। फिर तुम्हें मुझ से क्यों प्रेम है ? बातचीत में निपुण नहीं। रूप रंग भी ऐसा आकर्षक नहीं। जानते हो, मैं तुम से प्रश्न क्यों कर रही हूं ?

रमानाथ : मैं क्या जानूं, मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा है।

जालपा : मैं इस लिए पूछ रही हूं कि तुम्हारे प्रेम को स्थाई बना सकूं।

रमानाथ : मैं कुछ नहीं जानता जालपा, ईमान से कहता हूं, तुम में कोई कमी है, कोई दोष है, यह बात आज तक मेरे ध्यान में नहीं आई। लेकिन तुमने मुझ में कौन सी बात देखी, न मेरे पास धन है, न विद्या है, न रूप है .... बताओ ?

जालपा : बता दूं ? ... .मैं तुम्हारी सज्जनता पर मोहित हूं। अब तुम से क्या छिपाऊं, जब मैं यहां आई तो भले ही तुम्हें अपना पति समझती थी, लेकिन कोई बात करते या कहते समय मुझे चिन्ता होती थी कि तुम उसे पसन्द करोगे या नहीं। यदि तुम्हारे बदले मेरा विवाह किसी दूसरे पुरुष से हुआ होता तो उसके साथ भी मेरा यही व्यवहार होता। यह पत्नी और पुरुष का रिवाजी नाता है। पर अब मैं तुम्हें गोपियों के कृष्ण से भी न बदलूंगी। लेकिन तुम्हारे दिल में अब भी चोर है। तुम अब भी मुझ से किसी-किसी बात में पर्दा रखते हो।

रमानाथ : यह तुम्हारी केवल शंका है जालपा। मैं दोस्त से भी कोई दुराव नहीं करता, फिर तुम तो मेरी हृदयेश्वरी हो।

जालपा : मेरी तरफ देख कर बोलो, आंखें नीची करना मर्दों का काम नहीं है।

[Flash back समाप्त होता है।]

रमानाथ : काश मैं अपनी चादर से अपने पांव बाहर न फैलाता। जालपा को खुश रखने के लिए मैंने कर्ज़ पर कर्ज़ लिया। झूठी शान दिखाने से कभी बाज नहीं आया। काश, आज मेरा सृजनहार मुझे मिलता तो पूछता, "प्रेमचन्द जी 'गबन' के लिए रमानाथ ही रहा था, आपके लिए और कोई नहीं मिला था क्या ? मर्दों की सभी कमजोरियों को आपने मुझ में ही ढाल दिया ? क्यों ? मैं क्या इन्सान था या कोई ऐसा बर्तन जिसमें जो जी चाहे डाल दो। ठीक है मैंने रतन के रुपये अपने खर्च में डाल दिए। रतन जालपा की प्रिय सहेली थी, मशहूर वकील की पत्नी थी रतन। लेकिन मेरी मजबूरियां............। उफ ! कौन करेगा उनका मूल्यांकन ! मुझ जैसे न जाने कितने थे, कितने हैं, कितने और होंगे।

साहित्यकार : ओ, रमानाथ बाबू हैं ?

रमानाथ : हां, मैं ही हूं।

साहित्यकार : कुछ सोच रहे थे शायद।

रमानाथ : नहीं आप से कुछ कहना चाह रहा था, सोचा तो मैंने जीवन में बहुत, उस सोचने का क्या लाभ हुआ, क्या हानि हुई, इस पर कुछ नहीं कहना है मुझे। मैं तो बस अपने सृजनहार का एक संकेत यह आप को सुना रहा हूं।। उन्होंने कहा है, "मन की एक दशा वह भी होती है, जब आंखें खुली होती हैं, और कुछ नहीं सूझता, कान खुले रहते हैं और कुछ नहीं सुनाई देता।"

साहित्यकार : हां प्रेमचन्द जी ने यही कहा है। पढ़ा है मैंने।

रमानाथ : आपने पढ़ा है, मैंने भोगा है उसे। मैंने जानते हुए भी ग़बन किया पर क्यों किस लिए ? पत्नी से मन की बात कहने का साहस मुझ में क्यों नहीं आया। ठीक ही तो है 'विजय बहिर्मुखी होती है, पराजय अन्तर्मुखी'।

(दृश्य परिवर्तन)

साहित्यकार : अच्छा जालपा जी एक प्रश्न और पूछूं तो जबाव देंगी।

जालपा : क्यों नहीं–पूछिए।

साहित्यकार : आपको गहनों से इतना मोह क्यों था।

जालपा : गहनों से मेरा प्यार नारी सुलभ था। मैंने उनसे साफ कह दिया था-अगर मैं जानती तुम्हारी आमदनी इतनी थोड़ी है, तो मुझे क्या ऐसा शौक चुराया था कि मुहल्ले भर की स्त्रियों को तांगे पर बैठा-बैठा कर सैर कराने ले जाती। अधिक से अधिक यही तो होता कि कभी-कभी चित दुःखी हो जाता, पर यह तकाज़े तो न करने पड़ते।। मैं क्या जानती थी कि तुम मुझ से यह छल कर रहे हो, कोई वैश्या तो थी नहीं कि तुम्हें नोच खसोट कर अपना घर भरना मेरा काम होता। मैं तो भले बुरे दिनों की वीसायित हूं। भले में तुम चाहे मेरी बात मत पूछो, लेकिन बुरे में तो मैं तुम्हारे गले पड़ूंगी ही।

साहित्यकार : मैंने सब वृतान्त पढ़ा है ग़बन में जालपा जी।

जालपा : पढ़ा होगा—मैं तो कुछ अपने आप में ही उलझ कर रह गई थी—आप जैसे कई साहित्यकारों ने बड़ी लम्बी चौड़ी बातें कहीं हैं मेरे और उनके बारे में।

साहित्यकार : (हंस कर) हम कलमदारों का और धन्धा भी तो क्या है।

जालपा : (हंस कर) साहित्यकार महोदय, मुझे जब पता चला उन्होंने जो पत्र लिखा था मुझे-दे नहीं रहे थे वह तो बस अनायास ही मैंने उनकी जेब से दो रुपये निकालने के लिए जब हाथ डाला पत्र मेरे हाथ लग गया–मैं पत्र पढ़ती रही और वे न जाने कहां चले गए।

साहित्यकार : हां तब आप बड़े बाबू जी से मिलने खुद चूंगी कचहरी गई थी।

जालपा : हां गई थी। वहीं मुझे पता चला था कि उन्होंने सरकारी पैसे खर्च डाले थे। संकोच वश मुझे बताया तक नहीं था–और फिर ....। (सांस ले कर) मैंने अपना चन्द्रहार बेच दिया वही हार जिसकी लालसा मुझे बाल्यकाल से ही थी उसे आधे दामों बेच दिया–सरकारी रुपये चुका दिए—वह नहीं आया मैंने पहाड़ सी वह रात जिसका एक-एक पल एक-एक वर्ष के समान कट रहा था आंखों ही आंखों में काट दी।

साहित्यकार : विधि की विडम्बना।

जालपा : नहीं, 'दूसरे ईश्वर' प्रेमचन्द जी की विचार तरंग जिसमें न जाने कितना तेज़ करण्ट दौड़ता था। खैर जब कभी मिल सकी तो पूछूंगी उन से कि मेरा चित्रण उन्होंने क्यों किया था? क्या जालपा के अलावा और कोई नाम नहीं सूझा था उन्हें?

साहित्यकार : निर्मला भी कुछ ऐसा ही कह रही थी।

जालपा : निर्मला के बारे में कुछ भी कहने का मेरा अधिकार नहीं रह गया है। साहित्यकार बाबू मैंने जो भोगा, जो जिया उसी का हाल कह रही हूं। वही कंगन जिन्हें रमा बाबू मेरे हाथों में देख कर गुलाब की तरह खिल उठते थे, मुझे बेचने पड़े, अपनी ही अमीर सहेली रतन को।

साहित्यकार : यह रतन कंगन ले तो नहीं गई थी।

जालपा : यह ठीक है। महीना भर जब वह नहीं लौटे तो पिता मुझे मिलने आए। वह मुझे मायके ले जाना चाहते थे, मगर मैंने साफ़-साफ कह दिया था, "अभागनों के लिए स्वर्ग में भी जगह नहीं है दादा जी"।

साहित्यकार : हां आपके चरित्र के वे गौरवपूर्ण क्षण हैं जालपा जी।

जालपा : मैंने पिता जी से साफ-साफ कह दिया था कि क्या मायके में कोई दूसरी दुनिया है, क्या मैं वहां जा कर कुछ और हो जाऊंगी ? और फिर रोने से क्यों डरूं ? जब हंसना था तब हंसती थी, जब रोना है तो रोऊंगी भी। वह चाहे दूर चले गए हों, पर मुझे हर दम यहीं बैठे दिखाई देते हैं। यहां वह स्वयं नहीं हैं, पर घर की एक-एक चीज में बसे हुए हैं।

साहित्यकार : लेकिन आपने रमा बाबू की लाई हुई सभी चीजें गंगा में बहा दीं, आखिर क्यों ? अपनी सहेली रतन की बात भी आपने नहीं मानी।

जालपा : मुझ से क्यों पूछते हो ? पति की इस दुर्दशा के लिए मैं और मेरी लालसाएं कम दोषी नहीं थीं। पाप की कमाई को मैंने गंगा में डुबाना ही बेहतर समझा। निष्ठुरता मन पर विजय पाती है न।

(दृश्य परिवर्तन)

देवीदीन : मुदा, क्या लिखोगे बाबू ? देवीदीन नाम से गबन की किताब में मुन्शी प्रेमचन्द ने मुझे भी लिख डाला, अपना तो बस यही सिद्धान्त रहा है कि जिस देश में रहते हैं, जिनका अन्न-जल खाते हैं उसके लिए कुछ भी न करें तो धिक्कार है जीने पर।

साहित्यकार : रमा बाबू का हाथ अगर आप न थाम लेते तो पता नहीं क्या होता बेचारे का।

देवीदीन : मुदा, होता क्या ? यह संसार बड़ा विचित्र है बाबू साहब, दो-दो बेटे जब देश की खातिर जान दे बैठे तो मुझे लगा था, मेरी छाती गज भर की हो गई है, पांव जमीन पर न पड़ते थे। यही उमंग आती थी कि भगवान ने औरों को पहले न उठा लिया होता तो इस समय उन्हें भी भेज देता। जब अर्थी चली थी तो एक लाख आदमी साथ थे। मैंने 'सुदेसी' की खातिर पूरे नौ दिन उसी बाजार में बिता दिए, नवें दिन दुकानदारों ने कसम खाई कि विलायती कपड़े अब न मंगवायेंगे। तब से जिन्दगी भर विदेशी दियासलाई तक घर में नहीं लाया था।

साहित्यकार : हां, जानता हूं, तुम किरदार के गाजी थे गुफतार के नहीं।

देवीदीन : भैया यह किरदार–गुफ़तार तो मैं नहीं जानता, हां इतना जरूर कहूंगा, प्रेमचन्द आज मिल जाएं तो कहूंगा, बाबू जी, तुम बरसों पहले जो सपना देखा करते थे वह अभी तक सपना ही बना हुआ है। नाम के 'देसी' हजारों है, काम के विदेसी ही हैं, तन देसी मन 'विदेसी'। पर खैर, मिलें जब पूछूं न।

[तभी मोटर का हार्न बज उठता है, एक मोटर आ कर रुकती है।]

साहित्यकार : ओह ! यह तो रतन है, वकील साहिब की पत्नी, जालपा की सहेली।

रतन : साहित्यकार महोदय, मैं ज्यादा बातें नहीं करूंगी । न समय ही है मेरे पास । अपने बारे में यह चन्द पंक्तियां लिख कर लाई हूं, पढ़ लो ।

[Flash Back]

(रतन की आवाज) : मैंने उनसे यानि अपने वृद्ध पति वकील साहिब से अच्छा व्यवहार नहीं किया मैंने उन्हें बड़े तीखे शब्द कहे । मेरा यह व्यवहार उस प्राणी के साथ था जो सागर की तरह गम्भीर था । उस दिल में कितनी कोमलता थी, कितनी उदारता । एक बीड़ा पान दे देती तो कितने प्रसन्न हो जाते थे, जरा हंस कर बोल देती तो कितने प्रसन्न हो जाते थे, पर मुझ से इतना भी नहीं होता था । उन बातों को याद करके आज हृदय फटा जाता है । हां (रुक कर) मानव जीवन की सबसे महान घटना कितनी शान्ति के साथ घटित हो जाती है । मेरे ही भतीजे—नहीं-नहीं वकील साहब के भतीजे मणी भूषण ने भी मेरा सब कुछ छीन लिया—मैं पूछती हूं क्यों ? शायद प्रेमचन्द जी चाहते होंगे—पर मिलेंगे कहां ? उन्हें ढूंढते-ढूंढते वर्षों बीत गए—सुना है अपनी कृतियों में रचे बसे बैठे हैं उन्हे ही खोजने जा रही हूं ।

[Flash Back समाप्त होता है]

जालपा : क्या सोच रहे हो साहित्यकार बाबू !

साहित्यकार : कुछ नहीं जालपा जी ! कितनी दिलेरी, कितनी बहादुरी दिखाई थी आपने । जब रमा बाबू आपके पास मिलने आए तो आपके मनोभाव क्या थे भला ?

जालपा : (हंस कर) वियोगियों में मिलन की रात बटोहियों के पड़ाव की रात है, जो बातों में कट जाती है । उन्होंने अपना दुःख कहा और मैंने अपना रोना रोया, लेकिन मैंने कह दिया था नीयत खोटी करके आत्मा को कलुषित करके एक लाख भी लाओ तो मैं उसे ठुकरा दूंगी । मुझे उनकी बातों पर जब बहुत गुस्सा आया तो यहां तक कह बैठी थी, क्या तुम इतने गए बीते हो कि अपनी रोटियों के लिए दूसरों का गला काटो । मुझे मजदूरी करना, भूखों मरना मंजूर है । बड़ी से बड़ी विपत्ति जो संसार में है, वह सिर पर ले सकती हूं लेकिन किसी का बुरा करके स्वर्ग का ताज नहीं ले सकती । तुम निश्चय कर लो कि तुम्हें ब्यान बदलना ही है । बस और सारी बाते आप ही आप आ जाएंगी ।

साहित्यकार : हां, वह सब मैं जानता हूं । मन होता है आपके चरण का टीका बना लूं । आप महान हैं जालपा जी, बहुत महान ।

जालपा : क्या ज़ोहरा से मिलेंगे आप ?

साहित्यकार : जरूर, ले आईए मिलता हूं । वह रही उसकी चिता, नहीं बकौल आपके उसी अलाव के पास खड़ी है (रुक कर) आप ही जाइए, मैं न जा सकूंगी । मेरा जी न जाने कैसा हो रहा है । कह नहीं सकती अपने आपको खुशकिस्मत कहूं या बदकिस्मत ।

[तभी ज़ोहरा नज़दीक आती है ।]

ज़ोहरा : आप आने की ज़हमत क्यों मोल लेते हैं साहब ! मैं खुद ही हाजर हो गई हूं । मैं कोठे वाली थी न । अच्छे बुरे सभी तरह के आदमियों से वास्ता पड़ चुका है, आदमियों की परख रखती हूं ।

साहित्यकार : रमा बाबू ने आपको जालपा से मिलने का काम सौंपा था शायद।

ज़ोहरा : हां ! एक हफ्ते बाद मैं जालपा से मिल सकी थी। रमा बाबू ने झूठी ग्वाही देकर जिस दिनेश बाबू को फांसी की सज़ा दिलवाने में मदद की थी, जालपा उसी दिनेश की बूढ़ी मां के लिए लाठी बन गई थी। मैं ज्यादा कुछ न कह सकूंगी। वह चितवन ! आह ! कितनी पाकीज़ा थी। जालपा की उस बेगरज़ खिदमत के सामने मुझे अपनी ज़िन्दगी कितनी ज़लील, कितनी कावेले नफरत मालूम हो रही थी। मुझे याद है जब मैंने कहा था जालपा तुम सचमुच देवी हो तो उसने जवाब दिया था–

जालपा : ज़ोहरा ऐसा मत कहो, मैं खिदमत नहीं कर रही हूं, अपने पापों का प्रायश्चित कर रही हूं। मैं बहुत दु:खी हूं। मुझ से बड़ी अभागन संसार में न होगी। मेरा प्रायश्चित इस जन्म पूरा न होगा इसके लिए मुझे कई जन्म लेने होंगे

साहित्यकार : रमा बाबू के जीवन में कितने उतार-चढ़ाव आए। कहीं वह दुर्बल नज़र आते हैं कहीं वीर। लेकिन जालपा जी, आप, ज़ोहरा, देवीदीन, जग्गो, रतन, अपनी मिसाल बस आप ही हैं।

जालपा : नहीं, ऐसा मत कहिए, शायद हमारा सृजन कर्ता किसी खास दिशा की ओर ले जाना चाहता था सब को। हम सब उन्हीं की तलाश में तो यहां बैठे हैं इस अलाव के किनारे।

(दृश्य परिवर्तन)

बाबा : क्या सोच रहे हो साहित्यकार महोदय।

साहित्यकार : ओ ! बाबा आप !

बाबा : हां मैं, किस-किस से मिल चुके हो अब तक ?

साहित्यकार : निर्मला, जालपा, रतन, ज़ोहरा, देवीदीन, जग्गो, रमा बाबू, मुन्शी तोताराम, घीसू, माधो सब से बातें कर चुका हूं बाबा।

बाबा : लेकिन देख रहा हूं अभी कोई गहरी सोच मन में है।

साहित्यकार : सो तो है ही बाबा। भागवत्कार ने स्मारिक भाषा की व्याख्या तो सम्भवत: साफ-साफ नहीं की परन्तु मैं उसकी अनुभूति साफ-साफ अनुभव कर रहा हूं।

बाबा : कहना क्या चाहते हो ?

साहित्यकार : निर्मला का जन्म हुआ १९२३ में, गबन की जालपा पैदा हुई १९३० में और अब प्रेमाश्रम की ओर देखता हूं तो सोचता हूं मुझे ज्ञानशंकर से पहले मिलना चाहिए था या नहीं।

बाबा : द्वापर और त्रेता का चक्कर छोड़ो साहित्कार महोदय, क्या हुआ जो प्रेमाश्रम की रचना १९१८ में हुई। प्रेमचन्द से पहले भी बहुत से साहित्यकार हुए, बाद में भी हुए, होते रहेंगे, होते रहे हैं। भलाई बुराई आदि काल में भी थी, वर्तमान में भी है, भविष्य में भी रहेगी, यह निश्चित है। जब प्रेमाश्रम के पात्रों से मिल लोगे तब मुझे अपनी अनुभूति फिर से बताना।

साहित्यकार : जो आज्ञा बाबा।

बाबा : इस अलाव या चिता की ज्वालाओं को देख रहे हो न।

साहित्यकार : देख रहा हूं बाबा।

बाबा : क्या बात सकते हो कौन सी लपट, कौन सी ज्वाला पहले उठी थी, कौन सी बाद में।

साहित्यकार : यह तो न बता सकूंगा बाबा।

बाबा : बस यहीं सुत्र तुम्हें अपने प्रयोजन को पा लेने में सफलता देगा। (रुक कर) हां प्रेमचन्द की खोज में तुम भी हो, मिल जाए तो मुझे भी बुला लेना। मैं भी उन से कुछ पूछना चाहता हूं।

साहित्यकार : अच्छा बाबा !

(दृश्य परिवर्तन)

साहित्यकार : ज्ञानशंकर से मिलने का ख्याल ही मैंने मन से निकाल दिया। जब ज्ञान शंकर ने साफ-साफ अपने चाचा से कह दिया था।

ज्ञानशंकर : आपके और मेरे जीवन सिद्धान्तों में बड़ा अन्तर है। आप भावों की साधना करते हैं और मैं विजय का उपासक हूं। आप निन्दा के भय से आपत्ति के सामने सिर झुकाएंगे, मुझे अपनी विचार स्वतन्त्रता के सामने लोकमत की लेशमात्र भी परवाह नहीं। यदि संसार स्वार्थपरता कह कर मेरी निन्दा करे तो मैं उसकी सम्मति को पैरों तले कुचल डालूंगा।

साहित्यकार : रही प्रभाशंकर की बात, तो मैं उनसे क्या मिलता ? अपने देवता स्वरूप स्वर्गीय जटाशंकर की नेकियों की याद के सिवा उनके पास था ही क्या ? हालात ने करवट ले ही ली थी, किसानों में मनोहर ही ऐसा था जो कुछ करना चाहता था, पर ज्ञानशंकर नया मालिक था, छोटे सरकार के तेवर कुछ और ही थे। गांव पर नई से नई आफत आती जा रही थी। क्या-क्या हो रहा था उसे प्रेमाश्रम में मुन्शी प्रेमचन्द अपनी कलम को अपने जिगर के खून में डुबो कर लिख ही गए हैं। मानों हमारे लिए कोई वसीयत कर गए हों। (रुक कर) नहीं, नहीं मैं शायद बहकने लगा हूं, वसीयत ही सही, है तो एक महान सृजक की ही कृति। (रुक कर) अरे, यह तो गायत्री है। रायबहादुर कमलानन्द की बेटी, मुझे याद है विवाह के दो ही सालों बाद विधवा हो गई थी बेचारी।

कमलानन्द : मुझ पर जो मुसीबतों का पहाड़ टूटा था उसे मैं ही जानता हूं। गायत्री विवाह के दो वर्षों बाद ही विधवा हो गई। जवान बेटा रामानन्द घोड़े से गिर कर मर गया। विद्या ज्ञानशंकर को ब्याही। ज्ञानशंकर की मनोवृत्ति, उफ !

साहित्यकार : आप शायद रायबहादुर कमलानन्द हैं न।

कमलानन्द : हां साहित्यकार महोदय, मैं ही कमलानन्द हूं।

साहित्यकार : आपको अपने सृजनहार से कोई शिकवा तो नहीं ?

कमलानन्द : (हंस कर) न ईश्वर से गिला, न प्रेमचन्द से शिकवा। मैंने तो जिन्दगी को हमेशा चुनौती ही समझा और चुनौतियों से मुकाबला करने में मुझे हमेशा से आनन्द मिलता रहा।

साहित्यकार : अपनी विधवा बेटी गायत्री के बारे में आपका क्या विचार है ?

कमलानन्द : (हंस कर) मैं यह आपको बतलाने वाला नहीं सब। आप साहित्यकार हैं और पात्रों की जांच परख का बीड़ा भी आपने उठाया है, यह सब आप खुद ही करिए।

साहित्यकार : खूब याद आया, गायत्री और ज्ञानशंकर की एक बात चीत हुई थी–

[Flash Back संगीत उभरता है।]

गायत्री : कल की बात अधूरी रह गई थी, आप कह रहे थे स्त्रियों में आकर्षण शक्ति पुरुषों से अधिक होती है, पर आपने इसका कोई कारण नहीं बताया था।

ज्ञानशंकर : इसका कारण तो स्पष्ट है स्त्रियों का जीवन क्षेत्र परिमित होता है और पुरुषों का विस्तृत। इसी लिए स्त्रियों की सारी शक्तियां केन्द्रस्थ हो जाती है और पुरुषों की विकेन्द्रित।

गायत्री : लेकिन ऐसा होता तो पुरुषों को स्त्रियों के अधीन रहना चाहिए था। वे उन पर शासन क्यों करते।

ज्ञानशंकर : तो क्या आप समझती हैं कि मर्द स्त्रियों पर शासन करते हैं ? ऐसी बात तो नहीं। वास्तव में मर्द ही स्त्रियों के अधीन होते हैं। स्त्रियां उनके जीवन की विधाता होती हैं। देह पर उनका शासन चाहे न हो, हृदय पर उन्हीं का साम्राज्य होता है।

गायत्री : तो फिर मर्द इतने निष्ठुर क्यों होते हैं ?

ज्ञानशंकर : मर्दों पर निष्ठुरता का दोष लगाना न्याय विरुद्ध है। वे उस समय तक सिर नहीं उठा सकते जब तक या तो स्त्री स्वयं उन्हें मुक्त न कर दे, अथवा किसी दूसरी स्त्री की प्रबल विद्युत शक्ति उन पर प्रभाव न डाले।

गायत्री : (हंस कर) आपने तो सारा दोष स्त्रियों के ही सिर रख दिया।

[संगीत]

गायत्री : (स्वगत) उफ ! मैं क्या जानती थी कि ज्ञानशंकर के मन में पाप है। मैं क्या कहूं, क्या न कहूं कुछ समझ में नहीं आता।

ज्ञानशंकर : (स्वगत) मैं कैसा दुरात्मा हूं। मेरे विवेक, ज्ञान और सद्‌विचार ने आत्म हिंसा के सामने सिर झुका दिया।

[Flash Back समाप्त।[

साहित्यकार : सोचता हूं गायत्री ने सारी घटना विद्या से क्यों न कह दी। .....लेकिन एक प्रकार कह ही तो दी थी। गायत्री दो ही दिनों बाद अपनी जमीनदारी के एक गांव की व्यवस्था देखने चली जो गई थी। (रुक कर) शायद कादिरखां, बिसेसर साहूजी, दुखकरन, मनोहर, सुकुखु सब हैं।

[लोगों का हल्का सा शोर उभरता है।]

कादिरखां : भई सुना है, हमारे दूसरे खालिक मुन्शी प्रेमचन्द के किरदारों की खोज में कोई 'लिखने वाले' क्या कहते हैं उन्हें 'लेखक' तशरीफ लाए हैं।

साहित्यकार : तो मैं हाजिर हूं कादिरखां साहब। आदाब अर्ज करता हूं।

कादिरखां : जीते रहो, खुश रहो, आबाद रहो। प्रेमाश्रम के किरदारों से मिलने आए हो बेटा !

खुशी की बात है। हम सब किसी न किसी रूप में हमेशा ज़िन्दा रहे हैं, रहेंगे। हिन्दोस्तान तो बसता ही है गांवों में। जमीन की समस्या हम गांव वालों को वरासत में मिलती है, मिलती रही है। प्रेमचन्द हमारे दुःख दर्द को जानते थे। (रुक कर) सुना है तुम उन्हें ढूण्ड रहे हो।

साहित्यकार : जी हां खान साहब।

कादिरखां : मिलें तो आदाब कहना। और कहना कि सिर्फ हमें कलमबन्द करके ही आप हम से दूर चले गए, यह नहीं होगा। हमारा आप पर उतना ही हक है जितना आपका हम पर।

कादिरखां : हां लेखक महोदय, एक सवाल आपसे पूछने को जी करता है।

साहित्यकार : शौक से पूछिए खान साहब।

कादिरखां : प्रेमाश्रम के ज्ञानशंकर के किरदार के बारे में आपका क्या ख्याल है ?

साहित्यकार : खान साहब क्या अर्ज करूं, कहानी लम्बी है वक्त कम, हां उसके खालिक यानी प्रेमचन्द जी के लफ्जों में ही आपके सवाल का जवाब है। फरमाते हैं "चित की चंचलता निन्द्रा की बाधक है।" एक अजीब सा भटकाव है ज्ञानशंकर के किरदार में। और दूसरी तरफ उन्हीं के भाई हैं प्रेमशंकर। सहपाठी ज्वालासिंह को ज्ञानशंकर को अन्धेरे में रखा लेकिन ज्वालासिंह की मुलाकात प्रेमशंकर से हो गई।

[Flash Back संगीत उभरता है।

ज्वालासिंह : नमस्कार ! प्रेमशंकर जी।

प्रेमशंकर : नमस्कार ! अरे ! आप, इस वक्त कहां ?

ज्वालासिंह : जरा लखत पर जा रहा हूं मौका देखने। ज्ञान ने अपनी आसामियों पर इज़ाफा लगान का दावा कर रखा है। मुकदमा मेरी ही अदालत में है।

प्रेमशंकर : तो क्या जो कुछ मिल रहा है उससे ज्ञान सन्तुष्ट नहीं।

ज्वालासिंह : हां आमदन कम है और फिर आधा तो आपका उसमें।

प्रेमशंकर : जी नहीं मेरा कुछ नहीं है। मैंने ज्ञान से साफ-साफ कह दिया है कि मैं इस जायदाद में हिस्सा लेना नहीं चाहिए।

ज्वालासिंह : (हैरानी से) क्या आपने उनके नाम हिब्बा कर दिया है ?

प्रेमशंकर : हिब्बा ही समझिए। मेरा सिद्धान्त है कि मनुष्य को अपनी मेहनत की कमाई खानी चाहिए। यही प्राकृतिक नियम है। किसी का यह अधिकार नहीं कि वह दूसरों की कमाई को अपनी जीवन वृति का आधार बनाए।

ज्वालासिंह : तो यह कहिए कि आप जमींदारी के पेशे को बुरा समझते हैं।

प्रेमशंकर : हां, मैं इसका भक्त नहीं हूं। भूमि उसी की है जो उसे जोते। शासक को उसकी उपज में भाग लेने का अधिकार इस लिए है कि वह देश में शान्ति और रक्षा की व्यवस्था करता है, जिस के बिना खेती तो हो ही नहीं सकती। किसी तीसरे वर्ग का समाज में स्थान नहीं है।

[Flash back समाप्त होता है]

साहित्यकार : प्रेमशंकर और ज्वालासिंह ने ग्रामीण जीवन के दुःखों का दारुण हृदय अपनी आंखों देखा। (रुक कर) काश प्रेमचन्द अभी इसी वक्त मिल जाते तो बहुत सी बातें कहता उनसे, मैं ही क्यों सारा 'प्रेमाश्रम उन से पूछता, ज्ञान से पूछता, ज्वालासिंह से पूछता कई प्रश्न कई सवाल। पर फिर ख्याल आता है प्रेम में ईश्वर है। यह संसार उसी का आश्रम हैं। प्रेम का आश्रम –प्रेमाश्रम यानी ईश्वर का घर। जो कुछ प्रेमाश्रम में है वही तो संसार में होता रहा है।

[संगीत तूफानी लहरो के साथ उभरता है और धीरे-धीरे कम हो जाता है।]

गायत्री : (स्वगत) आज अपने आप से ही एक सवाल पूछने का मन होता है, क्यों गायत्री? ज्ञानशंकर को अपना मैनेजर बना कर तुमने ठीक किया था गलत? हां, हां मैं गायत्री हूं, मुझे रानी का खिताब मिला। उस समारोह का प्रबन्ध ज्ञानशंकर ने किस खूबी से निभाया था, मेरी रियासत की आमदन बढ़ाने में ज्ञानशंकर ने कोई कसर न उठा रखी थी। और हां मैंने ही तो ज्ञानशंकर से कहा था कि मुझे वृन्दावन ले चलो।

[वही संगीत उभरता है और मन्द होता है।)

साहित्यकार : (स्वगत) : प्रेमाश्रम के रायसाहब, गायत्री और विद्या के पिता, कितना अजीब व्यक्तित्व है उनका। ज्ञानशंकर अपने आपको बड़ा चतुर समझता था लेकिन रायसाहब की पैनी निगाहों ने उसे उसी के सामने क्षणों में ही उसकी सही तस्वीर उसे दिखा दी–निगाहें हों तो ऐसी, ऐसा योगी और भोगी पात्र घड़ना प्रेमचन्द के बूते की बात है। रायसाहब को प्रणाम और उसके सृजन कर्ता को नम्र।

[संगीत उभरता है।]

गायत्री : मैंने अपने आपको छला! हां मैं वही गायत्री हूं जिस ने ज्ञानशंकर में कृपा को देखा था लेकिन झूठी आंखें थी वे मेरी। आज भी मैं वही गायत्री हूं और संकल्प किए बैठी हूं कि ज्ञानशंकर को तड़पा-पड़ा कर मारूंगी। (फीकी हंसी) मेरे सृजक, तुमने मुझे रच कर, मेरी जैसी कितनी नारियों को सच्ची आंखें प्रदान कीं। मेरे सृजक, तुमने मुझे, मेरी बहन विद्या, मेरे पिता रायसाहब कमलानन्द को जीवित मंच पर प्रेमाश्रम द्वारा साहित्य संसार में उजागर किया, वह सब केवल आप ही कर सकते थे।

[हल्का सा संगीत उभरता है।]

साहित्यकार : गायत्री जी।

गायत्री : कौन?

साहित्यकार : वही साहित्यकार हूं, जो आप सब के साथ-साथ सब के सृजक की तलाश में भटक रहा हूं।

[एक बार फिर पायल की झंकार उभरती है जैसे कोई नारी मुजरा कर रही हो।]

गायत्री : इस आवाज को सुन रहे हो न।

साहित्यकार : हां, शायद कोई मुजरा हो रहा है।

गायत्री : ठीक ! (रुक कर) यह सुमन नृत्य कर रही है। सुमन 'सेवा सदन' वाली, मुझ से उम्र में चार साल बड़ी है।

सुमन : प्रणाम साहित्यकार महोदय।

साहित्यकार : प्रणाम सुमन, प्रणाम ! आओ बैठो।

सुमन : आई हूं तो बैठूंगी ही, लेकिन एक शर्त पर।

साहित्यकार : (हंस कर) बैठने के लिए भी किसी शर्त की जरूरत होती है क्या ?

सुमन : बहुत सी बातें परिस्थितियों पर निर्भर करती हैं साहित्यकार महोदय।

साहित्यकार : सो तो है ही।

सुमन : इसीलिए शर्त की बात कह रही हूं।

साहित्यकार : मुझे शर्त मंजूर है, शर्त मंजूर है।

सुमन : तो बताईए, मैंने गजाधर का त्याग करके और फिर कोठे पर बैठने वाली वैश्या का जो रूप बिताया क्या मैंने वह ठीक किया था या गलत ?

साहित्यकार : तुम्हारे विचारों से मैं भली भान्ति परिचित हूं सुमन और मेरा जवाब यह है कि–न तो सब ठीक था, न ही सब गलत। सब परिस्थितियों के कारण हुआ।

सुमन : यह क्या आप अपनी बात कह रहे हैं साहित्यकार महोदय या अपने समाज की ओर से उत्तर दे रहे हो।

साहित्यकार : केवल अपनी ओर से।

सुमन : हां, तब तो मैं आगे की बातें कह सकती हूं।

साहित्यकार : कहो सुमन–जी खोल कर कहो अपने मन की बात।

सुमन : गजाधर जब मेरे पति थे, तो सब कुछ होकर भी मेरे कुछ न हो सके। (रुक कर) न-न अभी प्रश्न मत कीजिए सिर्फ सुनिए–हां तो जब तक गजाधर-गजाधर थे तो कुछ न हो सके मेरे, लेकिन जब गजानन्द होकर उन्होंने न सिर्फ मेरा ही उद्धार किया बल्कि मेरी बहन शान्ता का भी उद्धार किया सदन को तारा मुझे उनका अन्तिम सन्देश आज भी याद है तब सदन और शान्ता के घर में भी मेरा ठौर ठिकाना न रहा, तो मैं हताश होकर गंगा जी की ओर चली गई, वहीं पर स्वामी गजानन्द ने मुझे कहा था।

गजानन्द : सत्युग में मनुष्य की मुक्ति ज्ञान से होती थी, त्रेता में सत्य से, द्वापर में भक्ति से, पर इस कलियुग में इसका केवल एक ही मार्ग है और वह है सेवा। इसी मार्ग पर चलो, तुम्हारा उद्धार होगा। जो लोग तुम से भी दीन, दु:खी, दलित हैं उनकी शरण में जाओ। उनका आशीर्वाद तुम्हारा उद्धार करेगा। कलियुग के परमात्मा इसी दु:ख सागर में वास करते हैं।

सुमन : और मैंने उन्हीं के कहने पर अमल किया, 'सेवा सदन' का भवन, वहां की व्यवस्था में जो सुचारुता थी वह सब स्वामी गजानन्द की प्रेरणा से ही थी।

साहित्यकार : अब तो एक प्रश्न पूछ सकता हूं न।

सुमन : हां अब आप प्रश्न पूछ सकते हो।

साहित्यकार : पण्डित पद्म सिह के बारे में तुम क्या कहती हो।

सुमन : (हंस कर) मैंने हमेशा उन्हें श्रद्धा की नज़रों से देखा। भले आदमी थे, उनकी पत्नी सुभद्रा तो बहुत ही भली महिला थी। उनके भाई सदन सिह शान्ता का पति यानि मेरी छोटी बहन

का पति सदन, उसके पिता मदन सिंह उसकी माता भामा और बहन शान्ता के बारे में, मुझे कुछ अधिक नहीं कहना है। मैं तो सिर्फ इतना ही कहूंगी, सबके सब भले थे। अच्छे थे, मेरी एक छोटी सी भूल से बहुत से पात्रों को सेवा सदन के निर्माण का पात्र बना डाला।

साहित्यकार : और तुम्हारे माता पिता।

सुमन : कुछ न कहूंगी उनके बारे में, हां अगर प्रेमचन्द मिल जाएं तो एक सवाल जरूर करूंगी उनसे मैं।

साहित्यकार : भला कौन सा सवाल ?

सुमन : सिर्फ यही कि पिता बहुत भले आदमी थे। उनकी नेकी, उनकी अच्छाई ही उन्हें ले डुबी तो आखिर क्यों ? मेरी एक बुराई ने मुझे फिर भी नेक बना दिया, मेरे पिता की एक बुराई ने उन्हें आत्महत्या करने पर मजदूर कर दिया। आखिर क्यों ? उन्हीं का लहू मेरी रगों में भी था। मैं अगर जीवन के संघर्षों से उलझ सकती थी तो क्यों पिता दरोगा कृष्णचन्द्र ऐसा न कर सकते थे ?

साहित्यकार : हां सुमन, मैं भी यही प्रश्न पूछना चाहूंगा तुम्हारे रचनाकार से। लेकिन तुमसे एक प्रश्न और है पूछने को।

सुमन : पूछिए।

साहित्यकार : विट्ठलदास, चिम्मनलाल, दीनानाथ, अबुलवफा, पण्डित उमानाथ, शरीफहसन, हकीम शोहरतखां, तेगअली, सैयद शफक्तअली जैसे कई दूसरे लोगों के बारे में तुम कुछ कहना चाहोगी।

सुमन : कहने को तो बहुत कुछ है साहित्कार महोदय। हां इतना कहूंगी जरूर कि विट्ठलदास जैसे व्यक्ति बहुत कम होते हैं। बाकी के लोगों के बारे में मुझे कुछ खास नहीं कहना है। मैं किसी का नाम नहीं लूंगी। हां इतना जरूर कहूंगी कि उद्धार के नाम पर, सेवा के नाम पर भाषणों की सीमा न तब थी न आज है। मेरे इर्द-गिर्द घूमने वाले बहुत से पात्रों जैसे लोग आज भी मौजूद हैं। साहित्यकार महोदय, लेकिन गजानन्द, विट्ठलदास, पद्मसिंह जैसे लोगों का आज भी अभाव है। आज एक नहीं कई 'सेवा सदनों की जरूरत है। मेरे सृजक ने ठीक ही कहा है, "सुख सन्तोष से प्राप्त होता है और आदर सेवा से।"

(दृश्य परिवर्तन)

[संगीत तेज उभरता है और धीरे-धीरे मन्द होता जाता है। जैसे ही संगीत बन्द होता है सूरदास का भजन सुनाई देता है।]

काहै कें ताना, काहै की भरनी,
कौन तार से बीनी चदरिया ?
इंगला पिंगला ताना भरनी,
सुख मन तार से बीनी चदरिया।
आठ कंवल दल चरखा डोले,

पांच तत्व, गुन तीनी चदरिया।
साईं को सियत मास दस लागै,
ठोक ठोक के बीनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ै,
ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया।
• दास कबीर जतन से ओढ़ी,
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

साहित्यकार : शायद 'रंगभूमि' के सूरदास हैं। इनके सृजक मुन्शी प्रेमचन्द जी ने क्या खूब कहा है कि भारतवर्ष में अन्धे आदमियों के लिए न नाम की जरूरत होती है न काम की, सूरदास उनका बना बनाया नाम है और भीख मांगना बना बनाया काम। "उनके गुण भी जगत् प्रसिद्ध है गाने बजाने में विशेष रुचि हृदय में विशेष अनुराग, आध्यात्म और भक्ति में विशेष प्रेम, उनके स्वाभाविक लक्षण है। बाह्य दृष्टि बन्द और अन्तर्दृष्टि खुली हुई।" यह सब बातें कसौटी पर भी खरी ही उतरती हैं। सोफिया की मां ने जब सूरदास से कहा–

मिसेज सेवक : तेरे भगवान ने तुझे अन्धा क्यो बना दिया ? इसलिए कि तू भीख मांगता फिरे ? तेरा भगवान बड़ा अन्यायी है।

सोफिया : मामा, आप इसका अनादर क्यों कर रही हैं ? मुझे शर्म आती है।

सूरदास : भगवान अन्यायी नहीं हैं, मेरे पूर्व जन्म की कमाई ही ऐसी थी। जैसे कर्म किए हैं, वैसे भोग रहा हूं। यह सब भगवान की लीला है वह बड़ा खिलाड़ी है। घरौंदे बनाता बिगाड़ता है उसे किसी से बैर नहीं। वह क्यों किसी पर अन्याय करेगा।

साहित्यकार : और उसी सूरदास की जमीन को सोफिया के पिता जॉन सेवक हथियाना चाहते हैं किसी भी कीमत पर। साम, दाम, दण्ड, भेद कोई भी नीति अपना कर। जॉन सेवक को जब पता चला कि जिस जमीन पर वह तम्बाकू का कारखाना खड़ा करना चाहते हैं तो उनकी भाषा ही बदल गई थी। उनके इस परिवर्तन पर सूरदास ने अपने आपको समझाते हुए कहा था–

सूरदास : मील भर दौड़ा कर कह दिया था चल हट। बूढ़िया तो कर-कसा है। हां लड़की का स्वभाव अच्छा है। उसमें दया धर्म है। (रुक कर) राम-राम, थक गया। ऐसा आज तक नहीं हुआ था कि इतना दौड़ा कर किसी ने कोरा जवाब दिया हो। भगवान की यही इच्छा होगी। (मन को समझाते हुए) मन इतना दुःखी न हो। मांगना तुम्हारा काम है, देना दूसरों का काम है।

[हल्का सा संगीत उभरता है।]

साहित्यकार : चतारी के राजा महेन्द्रकुमारसिंह साहब, जब जॉन सेवक के लिए सूरदास को अपनी जमीन देने के लिए राजी करने के लिए सूरदास के पास पहुंच कर बोले थे–

महेन्द्रकुमारसिंह : सूरदास, जरा यह भी सोचो कि तुम्हारी जमीन पर जब कारखाना लगेगा तो लोगों को कितना लाभ होगा। बढ़ई आ कर आबाद हो जाएंगे। एक अच्छी बस्ती हो

जाएगी। आस पास के किसानों को अपनी शाक-भाजी लेकर शहर न जाना पड़ेगा। यहीं खरे दाम मिल जाएंगे। सभी को लाभ होगा। क्या तुम इस पुण्य के भागी न बनोगे ?

सूरदास : सरकार ठीक कहते हैं। मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जाएगी। रोज़गारी लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन सरकार जहां यह रौनक बढ़ेगी, वहां ताड़ी शराब का प्रचार भी तो बढ़ जाएगा। देहात के किसान अपना काम छोड़कर मजदूरी के लालच में दौड़ेंगे। जो बुराइयों भरी रौनक शहर में है वही यहां भी हो जाएगी। भगवान करे, यहां वह रौनक हो। सरकार मुझे इस कुकरम से बचाए। यह सारा पाप मेरे सिर पड़ेगा।

साहित्यकार : सूरदास केवल मात्र एक अन्धा भिखारी ही नहीं था। सोफिया केवल मात्र एक अन्ध-विश्वासी युवती नहीं थी। सोफिया के निर्माण में, सूरदास और सोफिया या रंग भूमि के पात्रों को घड़ने में दूर तक देखा है। वाल चक्कर से भी आगे गई हैं उनकी निगाहें। अपनी सहेली इन्दु से सोफिया ने जो कुछ कहा वह हमें बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करता है।

सोफिया : मैं मूर्तिपूजा को सर्वथा मिथ्या समझती थी मेरा विचार था कि ऋषियों ने केवल मूर्खों की आध्यत्मिक शांति के लिए यह व्यवस्था कर दी है, लेकिन आज से मैं मूर्ति पूजा की कायल हो गई। मेरी समझ में यह बात आ गई है कि मूर्तियों का आकार प्रकार वैज्ञानिक नियमों पर ही आधारित है।

[Flash Back]

सोफिया : सूरदास के बारे में क्या कहूं साधू भी था और दार्शनिक भी। मैं तो आज यही कहूंगी, जो उस वक्त यानि अपने समय में मैंने मिस्टर क्लार्ड से कहा था—"अगर हम सूरदास के विचारों को व्यवहार में ला सकते तो निश्चय ही सांसारिक जीवन सुखमय हो जाता।"

[हल्का सा संगीत उभरता है।]

सोफिया : और जब इन्दु को नीचा दिखाने के लिए मैंने सूरदास से कहा कि तुम राजा महेन्द्रनाथ को इतना बदनाम करो कि वह शहर छोड़ कर चला जाए तो सूरदास ने जो कुछ कहा था वह सब मुझे अब भी याद है। उसने कहा था–

सूरदास : नहीं मिस साहबा, यह खिलाड़ियों की नीति नहीं है। खेलाड़ी जीत कर, हारने वाले खेलाड़ी की हंसी नहीं उड़ाता, उससे गले मिलता है और हाथ जोड़ कर कहता है, भैया, अगर खेल में हमने तुमसे कोई अनुचित बात कही तो हमें माफ करना।

सोफिया : कितना महान था सूरदास ! उसने मुझे दो ही बातों में नफरत के बजाए प्रेम करना सिखा दिया।

[हल्का सा संगीत उभरता है।]

सोफिया : मुझे आज भी एक घटना याद है। मैंने अपना सर्वस्व विनयसिंह पर न्यौछावर कर दिया था। मैं तन मन से उनकी हो गई थी–जब मैं जेल में विनय से मिली थी–तो विनय ने पहले मुझे मिस जेलकार्य कह कर पुकारा था.........लेकिन फिर ....।

विनय : तुम यहां के पोलिटिकल एजण्ट मिस्टर क्लार्य के साथ कैसे आई हो। उनके साथ कैसे रहती हो।

सोफिया : विनय, यह मत पूछो–मगर मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूं–मैंने जो कुछ किया तुम्हारे लिए किया है। यह सब स्वांग भरा केवल तुम्हारी रिहाई के लिए अगर तुम इस वक्त कहो-सोफी मेरे साथ जेल में रहो तो मैं यहां जेल में तुम्हारे साथ रहूंगी। मैंने तुम्हारा दामन पकड़ लिया है विनय अब इसे किसी तरह नहीं छोड़ सकती। चाहे तुम ठुकरा ही क्यों न दो। मैंने आत्म सम्मान तक तुम्हें समर्पित कर दिया है।

[संगीत उभरता है।]

विनय : सोफी आज से तुम मेरी हो–और मैं तुम्हारा।

[हल्का सा संगीत]

सोफिया : मुझे गोपियों की प्रेम कथा में आत्मिक शांति मिली थी। मैं कृष्ण को अपना आराध्य देव मानने लगी थी–भले ही मेरा धर्म और था–विनय का और। लेकिन मैं तो विनय के लिए सच्चे मन से समर्पित हो गई थी वैसे ही जैसे गोपियां कृष्ण के लिए। इसका अर्थ हरगिज़ यह नहीं कि मैं प्रभु ईसू को कम आराध्य मानती थी। हां मैं तो बस विनय पर समर्पित थी उसकी प्रेमयोगिनी।

[हल्का संगीत]

सोफिया : और एक दिन वह भी आया जब परिस्थितियों ने एक नई करवट ली–मुझे अपने ही मुंह से विनय को कहना पड़ा था।

[हल्का संगीत]

सोफिया : कोई दूसरी स्त्री तुम्हारे इन गुणों पर मोहित हो सकती है, प्रेम के विषय में नारियां आदर्श और त्याग का विचार नहीं करतीं। और भी न जाने मैंने कितनी कड़वी बातें विनय से कह दी—(रुक कर) हां आज मेरे सृजक मुझे मिल जाए तो पूछूं–प्रेमचन्द जी–मेरी रचना आपने किस उद्देश्य को सामने रख कर की थी। क्या आपका उद्देश्य पूरा हुआ था आज भी उसके आगे एक बड़ा सा प्रश्नचिन्ह ही अंकित है।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : रंगभूमि के रचनाकार आपको बार-बार नम्न सूरदास की रचना करके आपने इन्सान की वह तस्वीर पेश की है जो सब धर्मों का सार है। सारी सभ्यताओं का निचोड़ है। सूरदास जैसे इन्सान की रचना करके तुमने हमें कभी न बुझने वाली मिसाल दी है–तभी तो उस भैरों से जिसने सूरदास की झोंपड़ी दो बार जलाया, भीख के इकट्ठे किए पैस चुराए-उसी भैरों से सूरदास ने कहा था।

सूरदास : संसार में कौन है भैरों, जो कहे कि मैं गंगाजल हूं। जब बड़े-बड़े साधू सन्यासी माया-मोह में फंसे हुए है तो हमारी तुम्हारी क्या बात है। हमारी बड़ी भूल यही है कि हम खेल को खेल की तरह नहीं खेलते।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : (एक महिला खड़ी है, उन्हें प्रणाम करता है) आप रंगभूमि के शहीद विनय की मां रानी जाह्नवी हैं न।

रानी : हूं तो .... !

साहित्यकार : आपके चरणों में प्रणाम ! आप जैसी मां जिसे मिले उसे दोनों लोकों में और कुछ भी न चाहिए। न स्वर्ग का निवास न धरती का राज्य।

जाह्नवी : मैंने अपना कर्त्तव्य निभाया था। सूरदास ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया—विनय, इन्द्र, सूरदास, सोफ़ी, पण्डा नायकराम और विनय के साथ अपने प्राण देने वाले वह शहीद मुसलमान-हम सब रंगभूमि के सृजक की तलाश में हैं। हमारे माध्यम से सारे संसार की रंगभूमि को जो कुछ हमारे सृजक ने करना चाहा था क्या हम वह कर पाए या नहीं। अगर मिले तो मैं, सोफ़ी, सूरदास, हम सब उनसे पूछेंगे। (साहित्यकार की ओर देख कर) तुम्हारा काम तो और भी कुछ कठिन है, तुम्हें हम से भी मिलना है और हमारे रचयिता से भी, आओ हम साथ चलते हैं।

(दृश्य परिवर्तन)

[मधुर संगीत उभरता है और धीरे-धीरे कम हो जाता है। साहित्यकार अपने आप में कुछ कह रहा है।]

साहित्यकार : जब से इन्सान ने लिखना पढ़ना सीखा है, तभी से कलम और स्याही का उसका परिचय रहा है। लेकिन कुछ कलमें ऐसी भी हैं जो स्थूल रूप से या कहिए कि उसी अपने रूप से या कहिए कि उसी अपने असली रूप में हम आज नहीं देख सकते, लेकिन इस बात से इन्कार कैसे किया जा सकता है कि उन कलमों की मन्त्र मुग्ध कर देने की शक्ति आज भी वैसी ही है। बड़ी लम्बी कहानी है कलम और स्याही की, लेकिन एक कलम ऐसी भी है जिस के चमत्कार, चमत्कारों को भी मात देते हैं और वह कलम है मुन्शी प्रेमचन्द की। प्रेमा से ले कर गोदान तक के साहित्य समुद्र की वह लेखनी क्या मां वीणा-वादिनि की वीणा ही नहीं थी।

बाबा : किसी गहरी चिन्ता में मग्न हो साहित्यकार महोदय।

साहित्यकार : प्रणाम बाबा।

बाबा : आयुष्मान भव। कहो कैसी बीत रही है?

साहित्यकार : श्री चरणों की कृपा है महाराज !

बाबा : मैंने तुम्हें रंगभूमि के पात्रों से मिलते देखा है। और यह भी जानता हूं कि 'कायाकल्प' की कथा तुम्हें अपनी ओर आकृष्ट कर रही है।

साहित्यकार : त्रिकाल दर्शियों से कुछ भी तो छुपा नहीं रहता महाराज।

बाबा : मैं तुम्हारी सज्जनता से प्रभावित हुआ हूं। तुम एक सच्चे साहित्यकार हो।

साहित्यकार : (बात काट कर) मैं तो महाराज भला बुरा कुछ लिखता हूं—पर मुन्शी प्रेमचन्द जो लिख गए हैं—जो पात्र उन्होंने साहित्य जगत को दिए उन्हें देखकर उनसे बात करके ऐसा अनुभव होता है जैसे मुझे अभी कलम पकड़ने तक का सलीका नहीं है।

बाबा : किसी गुणवन्त के गुणों की सराहना कर सकना भी अपने आप में कम महत्वपूर्ण बात नहीं है मैं तुम्हारी इस प्रकृति से बड़ा आनन्दित हुआ हूं।

साहित्यकार : महाराज की बड़ी कृपा। (रुक कर) अगर आज्ञा हो तो एक प्रश्न पूछूं।

बाबा : पूछो।

साहित्यकार : मनुष्य चांद पर पहुंचा-यह तो जैसे आज की ही बात है। परन्तु कितने विश्वास से मुन्शी प्रेमचन्द जी ने 'कायाकल्प' में यह भविष्यवाणी कर दी थी।

बाबा : हां — मुन्शी जी बड़े दूरदर्शी थे। उनकी नजरें भविष्य की परतों में से भी झांक सकती थी तुम्हें याद है न रानी देवप्रिया के पूर्वजन्म के पति हर्षपुर के राजकुमार के माध्यम से विज्ञान और योग को किस खूबी से किस सरलता से समझा दिया है।

साहित्यकार : याद है महाराज — तिब्बत की एक गुफा में पूर्व जन्म के वैज्ञानिक डार्विन के साथ राजकुमार हर्षपुर की वार्ता।

[Flash Back]

राजकुमार : आपके दर्शनों से जीवन सफल हो गया। आपकी दया न होती तो शायद वहीं मेरा अन्त हो जाता।

महात्मा : अन्त कभी किसी का नहीं होता। जीव अनन्त है। हां अज्ञानवश हम ऐसा समझ लेते हैं।

राजकुमार : मुझे आपके दर्शनों की बड़ी इच्छा थी। आप में दिव्य और आलौकिक शक्ति है।

महात्मा : इसीलिए ऐसा समझते हो कि तुमने मुझे शिलाओं पर चढ़ते देखा है। यह कोई आलौकिक या दिव्य बात नहीं है यह तो साधारण मनुष्य भी अभ्यास से कर सकता है।

राजकुमार : आपने योग द्वारा यह बल प्राप्त किया होगा।

महात्मा : नहीं मैं योगी नहीं प्रयोगी हूं। डार्विन का नाम सुना होगा ? पूर्वजन्म में मेरा ही नाम डार्विन था।

राजकुमार : आप ही डार्विन थे।

महात्मा : हां उन दिनों मैं प्राणी शास्त्र का प्रेमी था-अब प्राण शास्त्र का खोजी हूं तुम मुझे शिलाओं पर चलते देखकर विस्मित हो गए, पर वह समय आ रहा है, जब आने वाली जाति जल स्थल और आकाश में समान रीति से चल सकेगी। पृथ्वी का क्षेत्र उन्हें छोटा मालूम होगा। वह पृथ्वी से अन्य पिण्डों में उतनी ही सुगमता से आ जा सकेंगे जैसे एक देश से दूसरे देश में।

राजकुमार : आपको अपने पूर्वजन्म का ज्ञान योग द्वारा ही हुआ होगा।

महात्मा : नहीं—मैं पहले ही कह चुका हूं कि मैं योगी नहीं प्रयोगी हूं। तुमने तो विज्ञान पढ़ा है, क्या तुम्हें मालूम नहीं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विद्युत का अपार सागर है। जब हम विज्ञान द्वारा मन के गुप्त रहस्य जान सकते हैं तो क्या अपने पूर्व संस्कार न जान सकेंगे। केवल स्मृति को जगा देने से ही पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है।

राजकुमार : मुझे भी वह ज्ञान प्राप्त हो सकता है ?

महात्मा : मुझे हो सकता है—तो आप को क्यों नहीं हो सकेगा—चलो तुम्हें अपनी प्रयोगशाला दिखाऊं।

[हल्का सा संगीत]

राजकुमार : महाराज आपकी प्रयोगशाला अद्भुत है। यहां बैठे-बैठे मुझे अपने तो सारे योरोप के दर्शन करवा दिये—जो कुछ हजारों मील दूर हो रहा है वह आपने अपनी प्रयोगशाला में सब दिखा दिया-सब सुनवा दिया (रुक कर) इस निर्जन स्थान में आबादी से कोसों दूर, यह कैसे इन प्रयोगों में सफलता हुई, ईश्वर ही जान सकते हैं। महात्मा लोग तो योग की क्रियाओं ही में कुशल होते हैं अध्यात्म उनका क्षेत्र है। विज्ञान पर उन्होंने कैसे आधिपत्य जमाया।

महात्मा : (हंस कर) विज्ञान अन्तःकरण को भी गुप्त नहीं छोड़ाता। तुम्हें इन बातों से आश्चर्य हो रहा है। पर यथार्थ यह है कि विज्ञान ने योग को बहुत सरल कर दिया है। वह बहिर्जगत से अब धीरे-धीरे अन्तर्जगत में प्रवेश कर रहा है। मनोयोग की जटिल क्रियाओं द्वारा जो सिद्धि वर्षों में प्राप्त होती थी वह अब क्षणों में हो जाती है कदाचित वह समय दूर नहीं कि हम विज्ञान द्वारा मोक्ष भी प्राप्त कर सकेंगे। हां (रुक कर) मैं इतना जरुर कहूंगा कि विज्ञान अगर प्राणियों का उपकार न कर सके तो उसका मिट जाता ही अच्छा है। केवल जिज्ञासा को शांत करने, विलास में योग देने, या यथार्थ की सहायता करने के लिए योग करता है उसका दुरुपयोग है। मैं चाहूं तो अभी एक क्षण में योरोप के बड़े से बड़े नगर को नष्ट भ्रष्ट कर दूं, लेकिन विज्ञान प्राण रक्षा के लिए है, वध करने के लिए नहीं। मेरी प्रयोगशाला जैसी दूसरी प्रयोगशाला संसार में नहीं है।

राजकुमार : वह अब तो मैंने अपनी आंखों से देख लिया है भगवन्।

महात्मा : मेरा मान आकाश में जितनी ऊंचाई तक पहुंच सकता है, उसकी योरोप वाले कल्पना भी नहीं कर सकते। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही मेरी चन्द्र लोक की यात्रा सफल होगी। योरोप के वैज्ञानिकों की तैयारियां देख कर मुझे हंसी आती है। जब तक हम को वहां की प्राकृतिक स्थिति का ज्ञान न हो, हमारी यात्रा सफल नहीं हो सकती। सबसे पहले विचार धाराओं को वहां ले जाता होगा। (रुक कर) विद्वान लोग भी कभी-कभी बालकों की सी कल्पनाएं करने लगते हैं। प्राचीन काल में ऋषि जप योगफल से त्रिकाल दृष्टि प्राप्त किया करते थे। पर उसमें बहुधा भ्रम हो जाता था। उसकी सहायता का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण न होता था। मैंने वैज्ञानिक परीक्षाओं से उस कार्य को सिद्ध किया है।

[Flash Back]

साहित्यकार : ओह—शायद कायाकल्प के मुन्शी बज्रधर जी आ रहे हैं इधर—(सोच कर) हां वही तो हैं अपनी मिशाल आप। इन्हीं के पुत्र हैं चक्रधर जी। बाप और बेटे के विचारों में जमीन आसमान का अन्तर है—मुन्शी जी को बोलने का मर्ज है–शायद! खुशामद करना तो कोई उनसे सीखे–लीजिए आ ही तो गए।

मुन्शी बज्रधर : अजी राजा विशालसिंह का ब्याह इसी बन्दे की कोशिशों से हुआ है। तहसीलदारी यूं ही नहीं की है। राजा विशालसिंह मनोरमा से ब्याह करना चाहते थे। इस बन्दे ने बस वह चक्कर चलाया कि सारा काम चुटकियों में हो गया।

[हल्का संगीत]

मुन्शी बज्रधर : हजूर मेरी बहू तो साक्षात लक्ष्मी है। मैंने तो अपनी जिन्दगी भर में ऐसी औरत नहीं देखी। एक महीना से ज्यादा हो गया हैं, पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि अपनी सास की देह दबाए बगैर सोई हो। सब से पहले उठती है और सबसे पीछे सोती है। आहल्या जैसी बहू पा कर मैं बेहद खुश हूं, सरकार बेहद खुश।

साहित्यकार : मुन्शी जी आदाब अर्ज करता हूं।

मुन्शी बज्रधर : आपकी तारीफ !

साहित्यकार : बस एक कलमकार हूं। आपकी तहसीलदारी के जमाने को आज भी लोग याद करते हैं। सोचा नियाज़ हासिल करता चलूं।

मुन्शी बज्रधर : जीते रहो, जीते रहो। तहसीलदारी यूं ही नहीं की। जो काम किसी और से न हो सकता था, हुक्काम बस इस बन्दे को ही याद करते थे। राजे-महाराजे, विलायती साहब, रानी साहिबा, दीवान साहब, आसामियां सब की मुशकिलें चुटकियों में हल की हैं। तहसील-दारी यूं ही नहीं की है बेटा।

[हल्का सा संगीत]

साहित्यकार : और चक्रधर ! इन्हीं मुन्शी बज्रधर के पुत्र हैं। सेवा, त्याग, तपस्या की मूर्ति। पर सेवा के लिए जीवन की बाज़ी लगा दी। आपने सेवा का मूल्य कभी नहीं चाहा। आहल्या से विवाह किया तो भी सेवा भाव को ध्यान में रखकर और आहल्या ? वाह ! जैसे त्यागी चक्रधर वैसी ही त्याग की साक्षात प्रतिमा आहल्या। 'काया कल्प' के सृजनहार आपकी उन निगाहों पर निसार हो जाने को जी चाहता है कि जिस ने पिता पुत्र के ऐसे दो किरदारों की रचना की। और वैसी ही रचना की रानी मनोरमा और आहल्या की। कितना विचित्र संयोग –आहल्या और कोई नहीं उन्हीं राजा विशालसिंह की पुत्री थी जो त्रिवेणी के मेले में खो गई थी। चौबीस वर्षों बाद पिता पुत्री का मेल हो रहा था। बाबू यशोदानन्दन ने खोई गई बालिका को अपनी पुत्री की तरह पाला। चक्रधर का विवाह आहल्या के साथ हुआ लेकिन आहल्या ही वह 'सुखदां' थी जो खो गई थी।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : शायद रानी मनोरमा आ रही है ? (रुक कर) हां वही है। कुछ कह रही है शायद।

मनोरमा : बाबू चक्रधर मेरे गुरु थे। मैं उनसे पढ़ा करती थी। उन्हीं के लिए मैंने बूढ़े राजा विशालसिंह से ब्याह किया। –लोग समझते रहे मैं धन की लोभी हूं, धन के लिए मैंने बूढ़े राजा से शादी की, नहीं –। कौन जानता है मेरे दिल का हाल। मैंने अपने आराध्य देव, बाबू जी –बाबू चक्रधर की खातिर ही राजा विशालसिंह से ब्याह किया। विश्वास न हो तो देख लीजिए सारा काया कल्प पूछ लीजिए मेरे सृजनहार मुन्शी प्रेमचन्द से। मेरे बाबू जी मेरे आराध्य थे। मेरे प्राण उन्हीं में बसते थे। सोचती हूं आज अगर प्रेमचन्द मिल जायें तो उन से पूछूं कि क्या ऐसा दिल बनाने को मैं ही रह गई थी काया कल्प के लिए और कोई नाम नहीं मिला था आपको। लेकिन फिर सोचती हूं, इतना गौरव तब मुझे कहां मिलता ? मेरे सृजक तुम्हें प्रणाम ! तुमने ही तो चक्रधर की सृष्टी भी की थी।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : वह दूर सामने चक्रधर बैठे हैं। अाहल्या के पति, अाहल्या जो अब राजपुत्री थी, राजा विशालसिंह की खोई पुत्री सुखदा। शंखधर चक्रधर और अाहल्या का पुत्र था, लेकिन रानी मनोरमा उसे हमेशा सीने से लगाए रहती। एक पल को भी अपने से जुदा न कर सकती थी। एक से एक विचित्र संयोग हैं काया कल्प के। चक्रधर सोच रहे हैं–

चक्रधर : सम्पदा अाहल्या का और मेरा सर्वनाश किए डालती है। क्या अाहल्या यह सुख विलास छोड़ कर मेरे साथ चलने पर राजी होगी? मुझे डर है कि वह कहीं मेरा प्रस्ताव हंसी में न टाल दे। कहीं वह मुझे ही रुकने पर मजबूर न करे। अगर वह दृढ़ भाव से एक बार कह देगी कि तुम मुझे छोड़ कर नहीं जा सकते, तो कैसे जाऊंगा? अगर धर्म संकट में पड़ कर चलने को तैयार भी हो गई तो मनोरमा शंखधर को कब छोड़ेगी। शंखधर को छोड़ कर अाहल्या मेरे साथ जाएगी? जा कर प्रसन्न रह सकेगी। अगर बालक को मनोरमा ने दे भी दिया, तो क्या वह इस वियोग की वेदना को सह सकेगी? –मैं इन सब बन्धनों में पड़ कर अपना जीवन नष्ट नहीं करना चाहता। सम्पत्ति पर अपने सिद्धान्तों को भेंट नहीं कर सकता।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : कहां-कहां आपका नम्न करूं कायाकल्प के खातिर। हर्षपुर के राजकुमार महेन्द्र और रानी देवप्रभा का काया कल्प हो गया। राजकुमार महेन्द्र वैज्ञानिक थे, उन पर पूर्व जन्म के वैज्ञानिक के शिष्य फिर क्यों न वह अद्‌भुत यान की रचना करते। क्यों न अन्तरिक्ष में विचरते, न ही मेरी लेखनी मेरे विचार वहां तक पहुंच सकते, न ही तब मुन्शी प्रेमचन्द के पहुंच सके हैं। रानी देवप्रिया और हर्षपुर के राजकुमार महेन्द्र ने उस यान के माध्यम से जो कुछ कहा है, जो कुछ सोचने समझने को दिया गया है, वह मुन्शी प्रेमचन्द के अलावा कौन दे सकता है संसार को।

[हल्का संगीत]

मनोरमा : कितनी विचित्र बात है। बाबू जी ने मुझे कभी समझा ही नहीं। मैं भोग विलास के लिए रानी मनोरमा नहीं बनी। अाहल्या अपने आप को भूल गई, वह अपने दिनों को भूल गई, लेकिन मैं नहीं भूली। तभी तो मेरे मुँह से एक बात निकल गई थी। घन्नासिंह के प्रसंग पर बाबू चक्रधर दुःखी थे, वह अपने तपस्वी जीवन में फिर से लौटना चाहते थे, अाहल्या साथ नहीं जाना चाहती थी, मेरे मुँह से निकल गया था, मैं अाहल्या होती तो सब कुछ छोड़ कर आपके साथ चलती। यह ठीक है मुझे धन से प्रेम है लेकिन केवल इसलिए कि उससे मैं कुछ सेवा कर सकती। सेवा करने वालों की कुछ मदद कर सकती।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : कायाकल्प के वज्रधर मुन्शी और चक्रधर से तो मिल लिए, लेकिन लौंगी से अब तक मिलने का सौभाग्य नहीं मिला। वही लौंगी जो दीवान हरिसेवक, यानी मनोरमा की

धाय मां थी, दीवान साहब की आत्मा। जिसने मनोरमा और उसके भाई गुरुसेवक को मां की तरह पाला। दीवान हरिसेवक अगर ज़िन्दा थे तो केवल लौंगी के कारण। वही लौंगी जब मजबूरन या परिस्थितियों के कारण तीर्थ यात्रा पर चली गई तो दीवान साहब मृत्यु की ओर बढ़ने लगे। मनोरमा ने अपने भाई को लौंगी को लौटा लाने के लिए भेजा और उधर पिता और पुत्री में बातें होने लगीं।

मनोरमा : मैंने गुरुसेवक को लौंगी अम्मां को लिवा लाने को भेज दिया है। भैया न जाते तो मैं जाती।

दीवान : तुम उसे लिवाने जाओगी, रानी मनोरमा लौंगी कहारिन को मनाने जाएगी।

मनोरमा : मनोरमा लौंगी कहारिन का दूध पी कर बड़ी न होती तो आज रानी मनोरमा कैसे होती ?

दीवान : बेटी—तुम सचमुच दया की देवी हो—देखो अगर लौंगी आए और मैं न रहूं तो उसकी खबर लेते रहना-उसने मेरी बड़ी सेवा की है। मैं चाहूं तो अपनी सारी सम्पत्ति उसके नाम लिख सकता हूं लेकिन लौंगी कुछ न लेगी बेटी। वह केवल सम्मान चाहती है। कोई उससे आदर के साथ बोले तो उसे लूट ले। वह घर की स्वामिनी बन कर भूखी मर जाएगी, लेकिन दासी बन कर सोने का कोर भी न खाएगी यह उसका स्वभाव है। तुम्हारी और गुरु सेवक की बीमारी में उसने तुम दोनों की जो सेवा की-देख भाल की-वह तुम्हारी अम्मां भी न कर सकती।

मनोरमा : मुझे सब याद है पिता जी।

दीवान : एक बात पूछूं बेटी।

मनोरमा : पूछिए।

दीवान : तुम अपने भाग्य से सन्तुष्ट हो न ?

मनोरमा : क्या मैंने कभी कोई शिकायत की ?

दीवान : नहीं नारी (मनोरमा) तुमने कभी शिकायत नहीं की। लेकिन मैंने तुम्हारे साथ जो अत्याचार किया, उसकी व्यथा से मेरा अन्तःकरण पीड़ित हो रहा है। लौंगी ने तुम्हारा विवाह राजा साहब से न करने पर कितना जोर दिया था लेकिन मैंने एक न सुनी सच तो यह है मैंने अपने जीवन में अच्छे काम कम किए, बुरे काम बहुत किए। उनके दण्ड का भागी हूं। लौंगी के कहने पर चलता तो आज मेरी आत्मा शांत होती। (रुक कर) शायद देवी के दर्शन न होते। तुम उससे कह देना कि यह स्वार्थी, नीच, पापी ज़ीव अन्त समय तक उसकी याद में तड़फता रहा।

[दुःख भरा संगीत]

लौंगी : प्राणनाथ क्या मुझे छोड़ कर चले जाओगे ?

दीवान : (कमजोर आवाज में) लौंगी और पहले क्यों नहीं आई।

[दुःख भरा संगीत तेज होता है]

साहित्यकार : दीवान साहब चल बसे। लौंगी ने उनके कृत्यों को अपने आंसुओं से धो डाला (दूर से कहीं एक आवाज आती है—लौंगी को देखो।)

सोमसी

(दृश्य परिवर्तन)

साहित्यकार : कायाकल्प के कितने ही पात्र आ रहे हैं इधर, साफ-साफ देख रहा हूं रानी वसुमती, देवप्रिया, रानी रोहिणी, धन्नासिंह, मन्नासिंह और शंखधरसिंह। शंखधरसिंह ने अपने पिता चक्रधर को ढूण्ड निकाला। तो क्या वह काया कल्प के सृजनहार को नहीं ढूण्ड लेगा। लीजिए—मुन्शी बज्रधर फिर कुछ बोल रहे हैं।

बज्रधर : आहल्या का गौना हुआ है। राजा साहब ने आधा जगदीशपुर ही गौने में दे डाला। रोऊं कि हंसू। यही सम्पत्ति आज से पच्चीस साल पहले मिलती तो जीवन सफल न हो जाता। अब बुढ़ापे में इसे लेकर क्या करूंगा। नालायक है मेरा बेटा। हूं चक्रधर ! आप तो गया साथ में लड़के को भी ले गया, न जाने कहां मारा-मारा फिर रहा होगा। सारा वक्त इस सम्पत्ति की निगरानी में ही गुजरता है।

साहित्यकार : ख्वाजा महमूद जैसा इन्सान अब कहां मिलेगा। कायाकल्प का ख्वाजा महमूद बड़े गुर्दे का मालिक था। आज भी वह अपने सृजक को दुआएं दे रहा है। आज भी तो उसी इतहाद कीं जरूरत है, जो काया कल्प के समय में थी। ख्वाजा महमूद इस फिक्र में है कि अपने निर्माता के सामने जा कर कह सकें, देखिए मुन्शी जी कसौटी पर खरा उतरा हूं कि नहीं। रास्ते अलग-अलग हैं मंजिल एक है। इतहाद के सिवा मुल्क का भला हो ही नहीं सकता।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : वह नारी जिस ने आहल्या का पालन-पोषण मां की तरह किया था —वह केवल कुछ ही शब्दों में सब कुछ कह गई। वह है आहल्या की माता, हां माता ही तो –वागीश्वरी।

वागीश्वरी : ख्वाजा महमूद ने बहुत चाहा कि मैं कुछ महीना ले लूं। मायके वाले कई बार बुलाने आए। भैया बड़े वकील हैं, लेकिन पति की कमाई के अलावा मेरा किसी पर कोई अधिकार नहीं। पति प्रेम से वंचित हो कर स्त्री के उद्धार का कौन उपाय है बेटी। जिस सम्पत्ति के लिए तूने पति का त्याग किया आहल्या, उसको त्याग कर ही तू पति को पाएगी। तू इतनी कर्त्तव्यभ्रष्ट कैसे हो गई, यह मेरी समझ में नहीं आया।

आहल्या : अम्मां जी, सत्य कहती हूं, मैं केवल शंखधर के हित के लिए उनके साथ नहीं गई।

वागीश्वरी : इस विचार में क्या तेरी भोग लालसा न छिपी थी। खूब ध्यान करके सोच, तू इससे इन्कार नहीं कर सकती।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : और शंखधर कौन था ? वही हर्षपुर के राजकुमार महेन्द्र .. ! वाह ! पूर्वजन्म की दूसरी घटना, योग, प्रयोग का फिर मिलन। ठीक ही कहा है लेखक ने यह ब्रह्माण्ड एक विराट प्रयोगशाला के सिवा है ही क्या ?

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : अब और कुछ न कहूंगा, काया कल्प से पात्रों को हमने केवल पढ़ा है, लेकिन पात्र आज व्याकुल हैं अपने सृजनहार की खोज में।

(दृश्य परिवर्तन)

बज्रधर : साहित्यकार महोदय, यूं आसानी से जान न छूटेगी। यहां तहसीलदारी यूं ही नहीं की। और फिर मैं राजा विशालसिंह का सम्बन्धी तब बना, जी भर कर ऐश की, जो करना था सो किया, जो न करना था सो भी किया। लेकिन छाती ठोक कर कहता हूं दिल में कभी किसी से कीना नहीं रखा और न कभी किसी की बुराई ही की। (रुक कर) अरे हां, चलो आज तुम्हें बड़े-बड़े कलाकारों का गाना सुनाता हूं, चलते हो या ....।

साहित्यकार : मुआफी चाहता हूं मुन्शी जी वह देखिए होरी महतो मुझे उधर आने का इशारा कर रहे हैं।

बज्रधर : कौन ? वह गोदान वाला होरी।

साहित्यकार : जी हां।

बज्रधर : खूब, खूब, हां भई अब न कहूंगा। सोना, रूपा, झुनिया और गोबर को मेरी दुआएं देना।

साहित्यकार : इरशाद की तामील होगी।

बज्रधर : जीते रहो, खुश रहो।

(दृश्य परिवर्तन)

[दूर कहीं बांसुरी की धुन उभरती है जो धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है।]

झुनियां : बलमा तुम्हें कैसे दूं ? मेहमान हो। कहोगे एक लोटा पानी भी किसी ने न दिया।

गोबर : मेहमान काहे से हो गया झुनियां, तुम्हारा पड़ोसी ही तो हूं।

झुनियां : पड़ोसी, साल भर में एक बार भी सूरत न दिखावे तो मेहमान ही है गोबर।

गोबर : रोज-रोज आने से तो मरजाद भी नहीं रहती झुनिया।

झुनियां : (हंस कर) वही मरजाद तो दे रही हूं। महीने में एक बार आओगे तो ठण्डा पानी दूंगी। पन्द्रहवें दिन आओगे तो चिलम पाओगे, सातवें दिन आओगे तो बैठने को माची दूंगी। (हंस कर) रोज आओगे तो कुछ न पाओगे।

गोबर : दर्शन तो दोगी ?

झुनियां : दर्शन के लिए पूजा करनी पड़ेगी।

[हल्का सा संगीत]

साहित्यकार : जी हां, यह गोबर और झुनियां ही हैं। गोबर होरी महतो का लड़का और झुनियां है भोला की विधवा लड़की। भोला के पास गाएं हैं, उनमें से एक गाय होरी को पसन्द है। बरसों से एक गाए द्वार पर बांधने अभिलाषा लिए हुए है। होरी और झुनियां को देख कर गोबर के मन में न जाने कितनी नई आशाएं अंगड़ाइयां लेने लगी हैं। गोदान की गाए में होरी के प्राण हैं ? कौन नहीं जानता।

[Flash Back]

होरी : (स्वगत) गाए के लिए एक नान्द गाड़नी है। अभी तो रात को बाहर ही रहेगी लेकिन बाहर न बांधूंगा। बाहर लोग नजर लगा देते हैं। कभी-कभी तो ऐसा टोना-टोटका कर

देते हैं कि दूध ही सूख जाता है। पर (सोच कर) बाहर नान्द बनाने ही कौन देगा। कारिन्दा बैरी बन जाएगा। कारिन्दे से बैर कौन करे। पानी में रह कर मगर से बैर करना नादानी है। अन्दर ही बांधूंगा। पांच सेर से कम क्या दूध देगी।

[भोर का संगीत]

गोबर : अरे ! यह तो भोर हो गई। तुमने नान्द गाड़ी दादा।

होरी : नहीं अभी नहीं गाड़ी। सोचा कहीं न मिले तो नाहक भद्द हो।

गोबर : मिलेगी क्यों नहीं।

होरी : भोला के मन में कोई चोर बैठ जाए तो।

गोबर : चोर बैठे या डाकू ... ... गाय तो उन्हे देनी ही होगी।

[Flash Back Ends]

साहित्यकार : गोबर गाय ले आया होरी और धनिया की बरषों की साध पूरी हो गई। सारा गांव गाय देखने आया—नहीं आए तो बस सगे भाई शोभा और हीरा। और उधर गोबर और झुनिया का प्रेम परवान चढ़ रहा था।

गोबर : भिखारी को एक ही द्वार पर भरपेट भीख मिल जाए तो क्यों दर-दर घूमे।

झुनिया : भिखारी को एक जगह भरपेट कहां मिलता है। उसे तो मुट्ठी भर ही मिलेगा। सब कुछ तो तभी पाओगे जब अपना भी सब कुछ दोगे।

गोबर : मेरे पास क्या है झुनिया।

झुनिया : तुम्हारे पास कुछ नहीं है ? मैं तो समझती हूं कि मेरे लिए तुम्हारे पास जो कुछ है वह बड़े-बड़े लखपति लोगों के पास भी नहीं। मुझ से भीख न मांग कर, मुझे मोल ले सकते हो। (हंस कर) जानते हो दाम क्या देना होंगे। मेरा हो कर रहना पड़ेगा। फिर किसी के आगे हाथ फैलाते देखूंगी तो घर से निकाल दूंगी।

गोबर : मन से कहती हो झुनिया कि खाली लालच दे रही हो। मैं तो तुम्हारा हो चुका।

झुनिया : तुम मेरे हो चुके ? कैसे जानूं ?

गोबर : तुम जान भी मांगों तो दे दूं।

झुनिया : जान देने का मतलब भी समझते हो।

गोबर : तुम समझा देना।

झुनिया : जान देने का मतलब है साथ रह कर निर्वाह तो न करता। एक बार हाथ पकड़ कर उम्र भर निर्वाह करते रहना, दुनियां कुछ कहे चाहे मां बाप, भाई बन्दन, घर बार सब को छोड़ना पड़े, (रुक कर) मुंह से जान देने वाले बहुतों को देख चुकी, भंवरों की तरह फूल का रस लेकर उड़ जाते हैं। तुम भी तो इसी तरह न उड़ जाओगे। (रुक कर) आज तुमने मेरा हाथ पकड़ा है याद रखना।

गोबर : खूब याद रखूंगा झुनिया, और मरते दम तक निभा दूंगा।

(हल्का संगीत)

साहित्यकार : राय साहब अमर पालसिंह–उनके साथी, उनका सारा माहौल, कितना बनावटी था–मुंह में कुछ दिल में कुछ-इधर होरी, धनिया, झुनिया गोबर–! गोदान के पात्रों में से किससे पहले बात करूं ? राय साहब का माहौल तो आज भी वैसा ही है जैसा तब था–क्या गांवों के जीवन में कुछ तबदीली हुई है ?—एक बड़ा सा प्रश्नचिन्ह आ खड़ा हुआ है मेरे सामने ? अरे ! यह क्या–यह प्रश्नचिन्ह अपनी सूरत बदल रहा है–समझ गया 'अतीत' वर्तमान में आ रहा है न–ओह ! मालती है–राय साहब है-मिस्टर मैहता है-सब बड़े लोग हैं ? इनका सृजन करके गोदान के खालिक ने किस खूबी से दिखा दिया है कि मुलम्मा आखिर मुलम्मा ही होता है। तब भी–आज भी-आगे भी-और असलीयत-असलीयत ही होती है-तब भी-आज भी-आगे भी-इन में से किसी के साथ बात करने को जी नहीं करता यह अपने सृजनकर्त्ता के न हुए तो और किसी के क्या होंगे।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : मिर्जा खुरशीद आ रहे हैं इधर ! यह वही मिर्जा खुरशीद है 'गोदान' के राय साहब के दोस्त—शिकार खेलने गए थे-बातों ही बातों में काला हिरण उनकी गोली का नशाना बन गया था-और देख रहा था लकड़हारा।

मिर्जा : (गोली की आवाज़ के साथ) वह मरा–

लकड़हारा : अच्छा पट्ठा था मालिक। मण भर से कम न होगा। हुक्म हो तो उठा कर पहुंचा दूं।

मिर्जा (स्वगत) अभी एक मिनट पहले उसमें जिन्दगी थी जरा सा पत्ता भी खड़कता तो कान खड़े कर के चौकड़ियां भरता हुआ निकल जाता। कितना सुडौल जिस्म था कितनी प्यारी आंखें कितना दिलकश जलवा। इसकी कुलांचें दिल में खुशी की लहरें पैदा कर देतीं थीं–इसकी चौकड़ियों के साथ हमारा दिल भी चौकड़ियां भरने लगता था।

लकड़हारा : क्या सोच रहे हैं मालिक, कहां पहुंचा हुं, मुझे दो चार पैसे दे देना।

मिर्जा : (चौंक कर) ओह ! हां-हां अच्छा उठा ले, कहां चलेगा ?

लकड़हारा : जहां हुक्म हो मालिक।

मिर्जा : नहीं–जहां तेरी मर्जी हो, वहां ले जा–मैं तुझे देता हूं।

लकड़हारा : नहीं मालिक, हज्जूर (हजूर) ने सकार (शिकार) किया है–सो हम कैसे ले लें।

मिर्जा : नहीं नहीं मैं खुशी से कहता हूं-इसे तुम ले जाओ। तुम्हारा घर यहां से कितनी दूर है ?

लकड़हारा : कोई आधा कोस होगा मालिक।

मिर्जा : तो मैं तुम्हारे साथ चलूंगा। देखूंगा तुम्हारे बाल बच्चे कैसे खुश होते हैं।

[हल्का संगीत]

मिर्जा : वाह मेरे खलिक–अल्लाह मियां ने पैदा किया होता मुझे तो रंज न होता लेकिन तुम किस गुर्दे के मालिक थे मुन्शी साहब ! आज मिल जाओ तो पूछूं–क्या सोचकर मेरी तखलीक की थी–? खैर-ढुण्डने वाले को खुदा मिलता है। मुलाकात हो कर ही रहेगी। आज न सही फिर सही।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : होरी की चित संचित अभिलाषा-एक गाय के रूप में उसके घर आई थी-सोना-रूपा धनिया-गोबर सबकी लाडली बन गई थी वह गाय। लेकिन........लेकिन किसी ने उसे जहर दे दिया।

[Flash Back]

होरी : धनियां तेरे पेट में बात पचती नहीं, कुछ सुन पाएगी, तो गांव भर में ढण्डोरा पीटती फिरेगी।

धनिया : भला सुनूं तो ? मैंने कौन सी बात पीट दी कि यूं ही नाम बदनाम कर दिया।

होरी : अच्छा तेरा सक्क (शक) किसी पर होता है ?

धनिया : मेरा शक तो किसी पर नहीं है, कोई बाहरी आदमी था।

होरी : किसी से कहेगी तो नहीं।

धनिया : (थोड़ा चिड़ कर) कहूंगी नहीं तो गांव वाले मुझे गहने कैसे घड़वा देंगे।

होरी : अगर किसी से कहा तो मार ही डालूंगा।

धनिया : मुझे मार कर सुखी न रहोगे। अब दूसरी महरिया नहीं मिली जाती। जब तक हूं तुम्हारा घर सम्भाले हूं। जिस दिन मर जाऊंगी सर पर हाथ रख कर रोओगे। अभी मुझ में सारी बुराईयां ही बुराईयां हैं–तब आंखों से आँसू बहेंगे।

होरी : मेरा शक तो हीरा पर होता है।

धनिया : झूठ–बिल्कुल झूठ। हीरा इतना नीच नहीं है, वह मुंह का ही बुरा है।

होरी : मैंने अपनी आंखों से देखा है। सच तेरे सर की सौगन्ध।

धनिया : (हैरानी से) तुमने अपनी आंखों से देखा ? कब ?

होरी : वही, मैं सोभा को देख कर आया तो वो सुन्दरिया की नान्द के पास खड़ा था। मैंने पूछा कौन है ? तो बोला मैं हूं हीरा ! अलाव से आग लेने आया था। थोड़ी देर मुझ से बात करता रहा, मुझे चिलम पिलाई-वो उधर गया, मैं घर में आया और वहीं गोबर ने पुकार मचाई। मालूम होता है कि मैं गाय बान्ध कर सोभा के घर गया हूं और उसने इधर आ कर कुछ खिला दिया।

धनिया : (आह भर कर) इस तरह के होते हैं भाई, जिन्हें भाई का गला कटने में भी हिचक नहीं होती। उफ ! हीरा मन का इतना काला है। दाढ़ीजार को मैंने ही पालपोस कर बड़ा किया।

होरी : (धीरे से) अच्छा जा-सो रह, मगर किसी से भूल कर भी चर्चा न चलाना।

धनिया : (बिगड़ कर) कौन ? तड़का होते ही लाला को थाने न पहुंचाऊं तो अपने असल बाप की नहीं। यह हत्यारा भाई कहने लायक है, यही भाई का काम है वह बैरी है, पक्का बैरी, बैरी को मारने में पाप नहीं, छोड़ने में पाप है।

होरी : (घबरा कर) मैं कहे देता हूं धनियां अनर्थ हो जाएगा।

धनिया : (गुस्से में) अनर्थ नहीं अनर्थ का बाप हो जाए। मैं बिना लाला को बड़े घर भिजवाए मानूंगी नहीं, तीन साल चक्की पिसबाऊंगी, तीन साल ! वहां से छुटेंगे तो हत्या लगेगी, तीर्थ करना पड़ेगा-भोज देना पड़ेगा, और गवाही दिलाऊंगी तुम से, लड़के के सर पर हाथ रखा कर।

[Flash Back समाप्त होता है]

होरी : (स्वगत) गजब कर दिया था मैंने भी ! खुद ही सारी बात धनिया को बताई। और खुद ही उसे कितनी बुरी तरह मारा पीटा था। (रो कर) ओ मेरे बनाने वाले–तुमने मुझे कहीं का न रखा, झूठी कसम भी खिलाई, सच्ची बात भी निकलवाई-मेरे बनाने वाले मुन्शी जी–कहां हो जरा आओ तो सामने-कब से आपकी खोज कर रहा हूं। होरी ही रह गया था–और कोई नाम न मिला था, धनिया ने कितने पते की बात कही थी।

धनिया : यहां तो हिस्सा बांट होने वाला था। सभी के मुँह मीठे होते। ये हत्यारे गांव के मुखिया हैं। गरीबों का खून चूसने वाले। रिद ब्याज, डेढ़ी, सवाई नज़र भेंट, घूस रिसवत, जैसे हो गरीबों को लूटो, इस पर सुराज चाहिए-जेल से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से न्याय से।

[हल्का संगीत]

धनिया : बुखार ने तो तुम्हें निचोड़ कर ही रख दिया।

होरी : हां धनियां–पूरा महीना भर बिस्तर में पड़ा पड़ा सोचता रहता था-भगवान अब उठा ही लें तो अच्छा है।

धनिया : हाय राम ! कैसी बातें करते हो (प्यार से) अच्छा बताओ तुम्हें इतना गुस्सा कैसे आ गया था। मुझे तो तुम्हारे ऊपर कितना ही गुस्सा आवे पर हाथ न उठाऊंगी।

होरी : (नादिम होकर) अब उसका चर्चा न कर धनिया मेरे ऊपर कोई भूत सवार था। उसका मुझे कितना दुःख हुआ है। यह मैं जानता हूं।

धनिया : और जो मैं उसी रस में डूब मरी होती तो ?

होरी : तो क्या मैं रोने के लिए बैठा रहता, मेरी लाश भी तेरे साथ चिता पर जाती।

धनिया : अच्छा चुप रहो, वह बात की बात करते रहते हो–गाय गई सो गई-मेरे सर एक बिपता डाल गई हीरा की घर वाली पुनिया की चिन्ता मुझे मारे डालती है।

होरी : इसीलिए तो कहते हैं कि भगवान घर का बड़ा न बनावे। छोटों को कोई नहीं हंसता, नेकी बदी सब बड़ों के सर जाती है।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : धनिया देवी प्रणाम !

धनिया : अरे ! यह कौन है जो धनिया देवी कह रहे हैं मुझे ! क्यों जी मुझ से कह रहे हो कुछ। कौन हो ?

साहित्यकार : मैं एक साहित्यकार हूं धनिया देवी ! आप से ही मिलने आया हूं।

धनिया : अच्छा-अच्छा कारिन्दे हो। किस 'साह' की 'कार' पर हो।

साहित्यकार : नहीं धनिया देवी मैं लिखने वाला हूं, लिखता हूं।

धनिया : (हंस कर) अच्छा-अच्छा लिखते हो। हां भई हमारे जमाने में कोई चिट्ठी-पतरी लिखनी होती तो दूर-दूर तक जाना पड़ता था। कितने पढ़े हो भैया। यहां क्या करने आए हो ?

साहित्यकार : यह सब तो बाद में बता दूंगा, मैं तो आप से मिलने आया हूं।

धनिया : मुझ से ?

साहित्यकार : हां, आप से।

धनिया : भला क्यों ?

साहित्यकार : इस लिए धनिया देवी कि आपके पति होरी इन्सान के रूप में देवता थे और तुम इन्सान के रूप में देवी। जिस बहादुरी से तुम दोनों ने बरादरी का सामना किया और कौन कर सकता था।

धनिया : बस भैया बस, उन दिनों की याद मत दिलाओ। गोबर तो मर्द होकर भी भाग निकला। झुनिया की बांह पकड़ी थी उसने, मैंने उसे उसी वक्त से बहू मान लिया था। सच कहती हूं पोता बिल्कुल गोबर पर गया था, खूब तगड़ा।

[चूड़ियों की आवाज़]

धनिया : अरे तू क्या करने आ पहुंची इधर झुनिया।

झुनिया : मैं पल भर के लिए भी आप से दूर नहीं रह सकती हूं अम्मां। तुम न होती तो न जाने मेरी क्या दुर्गत बनती।

धनिया : लो देखो इसे। जब देखो तब बीती बातों को याद करती रहती है। अरे मैंने तो वही किया जो करना चाहिए था। बगले भगतों से तब भी चिड़ती थी, आज भी उनका मुंह नही देखना चाहती। झूठी मरजाद के नाम पर इन बगला भगतों ने सदा ही हम गांव वालों का खून चूसा है।

साहित्यकार : आप ठीक कहती हैं धनिया देवी।

धनिया : अरे, यह क्या देवी-देवी लगा रखी है भैया। सीधे-सीधे बात करो तो जवाब भी दूं। गोबर का बापू कह रहा था, कोई 'मुन्सी' जी हैं, भला सा नाम है उनका।

साहित्यकार : हां, उनका नाम है प्रेमचन्द, मुन्शी प्रेमचन्द।

धनिया : हां, हां यही नाम है, उन्हीं की खोज में निकली हूं।

साहित्यकार : उन्हें पा जाओ तो क्या करोगी धनिया देवी ?

धनिया : करूंगी क्या भैया, चरण छू लूंगी उनके। मेरी और झुनिया की लाज ही रख ली उन्होंने। और गोबर के बापू को तो उन्होंने आकास पर बिठा दिया है आकास पर।

झुनिया : और मैंने तो तब भी कहा था आज भी कहती हूं, जब बाप ने भी मुझे दुत्कार दिया तो अम्मां ने ही मुझे सहारा दिया था। मैंने अम्मां से कहा था अम्मां मुझ अभागन के कारण तो तुम्हें दुःख ही मिला। जब से आई, तुम्हारा घर मिट्टी में मिल गया। तुमने इतने दिन मुझे जिस प्रेम से रखा, मां भी न रखती। भगवान मुझे फिर जन्म दें तो तुम्हारी कोख से दें यही मेरी इच्छा है।

[हल्का संगीत]

साहित्यकार : (स्वगत) वाह ! क्या खूब कहा है गोदान में एक जगह पर मुन्शी जी ने—फरमाते है —बड़े आदमियों का गुस्सा पूरी अतायत चाहता है। अपने खिलाफ एक लफ़्ज़ भी नहीं सुन सकता। मनोविज्ञान के महान पण्डित थे मुन्शी प्रेमचन्द ! काश—कभी मिल जाएं तो पूछूं—जिन्दगी की बारीकियों पर आपकी निगाह इतनी जल्दी कैसे पहुंच जाती है।

[हल्का संगीत]

(मर्दों और औरतों का मिला जुला शोर)

साहित्यकार : गोदान का सारा परिवार ही दिखाई दे रहा है इस जमघटे में, होरी है, धनिया है, झुनिया है, गोबर है, खन्ना है, मिस मालती है पण्डित-माता दीन, दाता दीन बसेसर शाह, सोना, सिल्लो, महत्ता सब साथ हैं। भोला भी है–नोखेलाल भी है। और भी जाने-अनजाने सभी हैं जो 'गोदान' के सदस्य हैं-और इन्हें भी तलाश है मेरी ही तरह अपने सृजनहार की। राय साहब भी अपनी आन बान के साथ तशरीफ रखते हैं। और मुन्शी प्रेमचन्द–? हां खेतीहार किसानों मजदूरों का दर्द उन्हें अपनी अधूरी कृति 'मंगल सूत्र' में कहीं बान्धे हुए हैं शायद !

[हल्का संगीत]

बाबा : क्यों साहित्यकार महोदय–पा गए उन्हें

साहित्यकार : नहीं महाराज ! शायद कहानियों में कहीं मिल पाएं।

बाबा : (हंस कर) तुम्हें याद होगा मुन्शी प्रेमचन्द ने कहा था–अपने जीवन की श्रेष्ठतम् कहानी मुझे अभी लिखनी है।

साहित्यकार : कहा था महाराज–

बाबा : मैं तुम से कहूंगा–अपने इर्द-गिर्द देखो-अपने निकट कही ढूण्ढों-प्रेमचन्द मिल जाएंगे–उनका कोई न कोई पात्र किसी न किसी रूप में तुम्हें दिखाई दे जाएगा।

[संगीत—समाप्त]

६-टाप फ्लोर
दी माल शिमला-१

अकादमी की गतिविधियां

मास अप्रैल से मास जून, १९८१ तक
संगीत, नाटक एवम् नृत्य में प्रस्तुत कार्यक्रम

हिमाचल कला, संस्कृति एवम् भाषा अकादमी शिमला द्वारा मास अप्रैल से मास जून, १९८१ तक संगीत, नाटक एवं नृत्य के क्षेत्र में निम्नलिखित कार्यक्रम किए गए :—

बुद्ध जयन्ती के अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम

हिमाचल प्रदेश की संस्था 'सिद्धार्थ सद्धर्य संगम द्वारा बुद्ध जयन्ती के अवसर पर हर वर्ष एक साहित्यिक एवम् सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है। इस वर्ष बुद्ध जयन्ती के अवसर पर दिनांक १८ मई, १९८१ को काली बाड़ी हाल शिमला में संस्था द्वारा कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। संसद सदस्य श्री नारायण चन्द पराशर इस संस्था से पूर्ण रूप से सहयोजित हैं। केन्द्रीय उप राज्य मन्त्री श्री पी० के० थूंगण इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे। हिमाचल कला, संस्कृति एवम् भाषा अकादमी अपनी विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत प्रदेश की साहित्यिक एवम् सांस्कृतिक संस्थाओं को वित्तीय एवम् तकनीकी सहयोग देती है। इस कार्यक्रम में अकादमी द्वारा एक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करके संस्था को सहयोग दिया गया।

संसद सदस्य और उपाध्यक्ष हिमाचल कला, सस्कृति एवम् भाषा अकादमी, श्री नारायण चन्द पराशर ने मुख्य अतिथि एवम् अन्य दर्शकगणों का स्वागत करते हुए भगवान बुद्ध की जीवनी पर प्रकाश डाला। उन्होंने बौद्ध धर्म की महात्मा गान्धी की फ़िलॉस्फ़ी से तुलना करते हुए अपने विचार प्रकट किए। इस कार्यक्रम में विभिन्न विद्वानों द्वारा लेख पढ़े गए, कविताएं प्रस्तुत की गई और गायकों द्वारा भगवान बुद्ध को श्रद्धांजलियां अर्पित करते हुए गीत और भजन गाए गए।

अन्त में कार्यक्रम के मुख्य अतिथि केन्द्रीय उप राज्य मन्त्री श्री पी० के० थूंगण ने अपने भाषण में कहा कि हिमाचल के जनजातीय क्षेत्रों में लोगों का धर्म बौद्ध धर्म से मिलता जुलता है। उन्होंने विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विचारों एवं देश-विदेश के विद्वानों के विचारों और वर्तमान जीवन को सम्मुख रखते हुए अपने विचार प्रकट किए। उन्होंने श्री पराशर जी को १९७२ से कार्यरत संस्था के संचालन के लिए बधाई दी।

प्रलेखन कार्य

चौपाल में प्रलेखन कार्य :

चौपाल क्षेत्र में दिनांक ७ जून से ६ जून, १६८१ तक क्षेत्र के लोक-गीतों की रिकार्डिंग की गई। श्रीमती शान्ति देवी और पार्टी, श्री सरजूराम और पार्टी तथा श्री देवूराम और पार्टी द्वारा लगभग तीन घण्टे की रिकार्डिंग करवाई गई। सरजूराम और साथियों ने सिरमौर क्षेत्र की 'हारें' रिकार्ड करवाई। इन 'हारों' में दो खानदानों की दुश्मनी की गाथा है। शान्ति देवी और साथियों ने महासू क्षेत्र के लोक-गीत और नाटियां रिकार्ड करवाई। नाटियों में साधारणत: शृंगार रस प्रधान भाव ही होते हैं। नाटी गीत के साथ एक ताल विशेष का नाम भी है। १४ मात्राओं के इस ताल में अपनी एक लय और गति होती है। लगभग ५० वर्ष पूर्व गाए जाने वाली नाटियों की रिकार्डिंग की गई।

सिरमौर में प्रलेखन कार्य :

दिनांक १६ जून, १६८१ को सिरमौर जिला के देवठी मंझगांव में लोक-गीतों और गाथाओं के प्रलेखन कार्य की योजना के अन्तर्गत 'राजा भरतृहरी' लोक-गाथा को रिकार्ड किया गया। यह गाथा लगभग दो घण्टे के समय की रिकार्ड की गई। इस लोक-गाथा का आलेख तैयार किया गया है। इस गाथा को श्री चोलीराम सजैक, ७० वर्ष की आयु के बुजुर्ग कलाकार द्वारा गाया गया एवं गाथा का आलेख (मूल तथा अनुवाद) श्री विद्यानन्द सरैक द्वारा तैयार किया गया। इसके अलावा दो लोक धुनें तैयार की गई।

एक विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम का प्रस्तुतीकरण

दिनांक १८ जून, १६८१ को काली बाड़ी हाल शिमला में अकादमी के तत्वाधान में एक विशेष सांस्कृतिक कार्य-क्रम का आयोजन किया गया। दिल्ली से संसद की रेलवे अभिसमय समिति के सदस्य इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे। संसद सदस्य एवं उपाध्यक्ष हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी, श्री नारायणचन्द पराशर ने अपने भाषण में रेलवे अभिसमय समिति के सदस्यों का स्वागत करते हुए हिमाचल के विकास के सन्दर्भ में प्रकाश डाला। रेलवे अभिसमय समिति के सदस्यों की बैठक के सफलतापूर्वक आयोजन के लिए मनोकामना करते हुए कहा कि समिति रेलवे की बढ़ौतरी एवं तरक्की के लिए और भी महत्वपूर्ण कदम उठाएगी।

सांस्कृतिक कार्यक्रम का आरम्भ सिरमौर के वादक कलाकारों द्वारा बधाई से आरम्भ हुआ। 'बधाई' देवताओं की भक्ति के लिए समर्पित स्वछन्द वाद्य वृन्द है। इस वाद्य वृन्द में लोक वाद्य करनाल, नगाड़ा, हरिणसिंगा, शहनाई, ढोल और बांसुरी को प्रयोग में लाया जाता है। इसके पश्चात् आकाशवाणी के कलाकारों द्वारा कांगड़ा का भक्ति गीत प्रस्तुत किया गया। इसके आलावा हिमाचल प्रदेश के लोक गीत, नृत्य एवं नाट्य प्रस्तुत किए गए जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है :

ठोडा नृत्य :

ठोडा नृत्य एक युद्ध नृत्य खेल है जो कि दो राजपूत दल एक पाषड़ (पांडवों के समर्थक) और दूसरा षाठड़ (कौरवों के समर्थक) द्वारा खेला जाता है। यह नृत्य सिरमौर और महासू जनपद में बसन्त से ग्रीष्म तक 'जात' (मेले) के अवसर पर और आषाढ़ या चैत्र में 'बिशू' और 'पलैंच' मेलों के अवसर पर खेला जाता है। ठोडा–युद्ध नृत्य खेल एक समय पाषड़ और षाठड़ के बीच एक स्पर्धात्मक खेल रहा था। वर्तमान में ठोडा नृत्य खेल पांडव-कौरव काल के बाद का नमूना रहा है। दोनों दल अपने-अपने गांवों से मेले के स्थान तक स्वच्छन्द नृत्य करते हुए आते हैं एवं एक दूसरे को ललकारते हैं। मेले के स्थान में पहुचने पर दोनों दल नृत्य की वेष भूषाएं डालते हैं। इसमें सूथण (पाजामा) जो की कौउड़ (एक बड़) और दौवड़ा (दो बड़) दसूती जीन या ऊन का होता है, मोटे चमड़े का जूता, कलीदार कमीज, मगज़ी लगा हुआ टोप (पहले-पहले पगड़ी का भी प्रयोग होता था) और गातरा–जो कभी तरकश, डांगरू रखने के लिए और अब सजावट के लिए प्रयोग होता है-सम्मिलित हैं। दोनों दल हाथ में डण्डे, कंडासे, तीर कमान लिए रथैवला ताल (रौद्र ताल) में स्वच्छन्द प्रकार का नृत्य करते तथा इस युद्ध नृत्य के लिए ललकारते हुए एक स्थान में आते हैं। मां रेणुका परशुराम की भूमि सिरमौर एवं शिमला का संलग्न क्षेत्र है। कंडासे, डांगरू नृत्य में इस्तेमाल करना परशुराम युग का द्योतक है। यह खेल बिना रेफरी के लोगों की आंखों के सामने खेल–भावना के आधार पर खेला जाता है। दोनों दलों में से एक-एक नर्तक की जोड़ियां बन जाती हैं और नृत्य खेल आरम्भ हो जाता है। जोड़ीदार में से एक नर्तक दूसरे जोड़ीदार को तीर मारता है जो कि खेल की प्रथा के अनुसार घुटने के नीचे मारना होता है। इस तरह जोड़ीदार बारम्बार एक दूसरे को तीर (शरी) मारते हैं और इसके साथ स्वच्छन्द तरीके से ललकारे जाने वाले बोल बोलते हैं। इस तरह यह नृत्य मेले के समय कई दिनों तक चलता रहता है। यह दल मेले के दौरान कई वर्षों तक नृत्य खेल खेलते हैं। लेकिन जब किसी दल के नर्तक-सदस्य को तीर (शरी) से खून निकल आए तब यह खेल उस दल के साथ सदा के लिए खत्म हो जाता है। इसे शरी काटना या शरी गाड़ना कहते हैं।

इन क्षेत्रों में छवराता, दराल, दठाल, मगाण, सनाई, ढूण्ड, छवरोतू, वतीवड़े इत्यादि कई राजपूत हुए हैं। सिरमौर के शाठड़ राजपूत मंझगांवी, हावणे और शिमला के पाषड़ राजपूत जनेणा, फ़गेणां चार राजपूत बिरादरियां बड़ी प्रसिद्ध हुई हैं। आज से लगभग ३० वर्ष पूर्व मान्दर के बीशू पर दठाल-पाषड़ ने मंझगांव षाठड़ के सामने शरी काटकर मंझगांवी को बड़ा राजपूत मानकर इनसे हार मानी थी। इसी तरह जनेणे-पाषड़ के सामने ढूण्डू-षाठड़ ने शरी काटकर हार मानी थी। ढूण्डू के जनेणे के आतमाराम ने काफ़ी वर्ष पूर्व शरी गाड़ी थी।

ठोडा नृत्य को सिरमौर के कलाकारों द्वारा काली वाड़ी हाल की प्रोज़िनियम स्टेज पर प्रस्तुत किया गया।

सिरमौरी नृत्य :

नर्तकों, नर्तकियों द्वारा इस नृत्य को रथैवला ताल में नाटी से आरम्भ किया गया। इसके पश्चात भाना नृत्य इस श्रृंखला में प्रस्तुत किया गया। यह नृत्य बरसात का रूप रिहाली (हरियाली)

को प्रस्तुत करता है। यह नृत्य विभिन्न नाटियों के गायन के साथ प्रस्तुत किया गया। इस शृंखला में इसके पश्चात मुजरा नृत्य प्रस्तुत किया गया जो कि लोगों के बीच नर्तक का नाचना है और मनोरंजन से सम्बन्धित है और अन्त में स्वागती गीत ताल में टुड़क नृत्य प्रस्तुत किया गया ।

याक नृत्य :

केन्द्रीय तिब्बती स्कूल के कलाकारों द्वारा याक नृत्य प्रस्तुत किया गया। याक नृत्य एक जनजातीय लोक नृत्य है। याक हिमालय में एक प्रकार का पशु है जो गाय/बैल से मिलता-जुलता है जिसके शरीर पर लम्बे-लम्बे बाल होते हैं। कलाकारों द्वारा पशु की पूरी खाल पहन कर और पशु की तरह बनकर नृत्य प्रस्तुत किया गया। याक नृत्य में जंगली याक का प्राणिपालन प्रस्तुत किया जाता है।

लोक नाट्य करियाला :

शिमला, सोलन और सिरमौर जिला के विभिन्न क्षेत्रों पर गांव के कलाकारों द्वारा पूरी-पूरी रात यह लोक नाट्य करियाला प्रस्तुत किया जाता है। इस लोक नाट्य में अनेक स्वांग सम्मिलित हैं। कार्यक्रम में नम्बरदार का स्वांग शिमला के कलाकारों द्वारा किया गया।

इस कार्यक्रम में कुल ३७ कलाकारों ने भाग लिया। मंच का संचालन श्री खेमराज गुप्त 'सागर' ने किया और कार्यक्रम का आयोजन अशोककुमार हंस ने किया। अन्त में अकादमी के सचिव श्री एम० आर० ठाकुर ने संसद के अभिसमय रेलवे समिति के सदस्यों, दर्शकों का कार्यक्रम में पधारने के लिए धन्यवाद प्रकट किया और अभिसमय रेलवे समिति की बैठक के सफल आयोजन के लिए शुभ कामनाएं प्रकट की।

वित्तीय एवम् तकनीकी सहयोग

संस्था का नाम	राशि	तकनीकी सहायता
१. आल इण्डिया आर्ट एसोसिएशन, शिमला	रु० ६००/-	
२. भारतीय सामाजिक सुरक्षा, करसोग	रु० १०००/-	
३. हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय	—,,—	वेश-भूषा एवं प्रकाश यन्त्रों के रूप में सहयोग।
४. शिमला ग्रीष्मोत्सव समिति		प्रकाश यन्त्रों के रूप में सहयोग।

–अशोक कुमार हंस

श्री किशोरी लाल वैद्य के लेख 'हिमाचल का लोक कला वैशिष्ट्य' से सम्बन्धित (पृष्ठ 1–5)

H.A.A.C.L. आर०एन० 28271/75

1. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि०प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच (8)-6(3)1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

2. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, पीच व्लाज़म काटेज शिमला-2 द्वारा प्रसारित तथा **नवीन प्रिंटिंग प्रेस', जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश)** द्वारा मुद्रित।